चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

डॉ. उमाशंकर सतीश

भारतीय
साहित्य के
निर्माता



चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

उमाशंकर सतीश

साहित्य अकादेमी

Chandrakunwar Bartwal : Monograph in Hindi by Umashankar Satish on the modern Hindi poet, Sahitya Akademi, New Delhi (1999) Rs. 25

प्रथम संस्करण 1999

साहित्य अकादेमी

मुख्य कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23ए/44 एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, मुम्बई 400 014

ए.डी.ए. रंगमन्दिर, 109, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

ISBN 81-260-0298-0

मूल्य : पच्चीस रुपये

शब्द-संयोजन : सविता प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 110 032

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

1

जीवन परिचय

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का जन्म 20 अगस्त 1919 को जिला चमोली गढ़वाल पट्टी तल्लानागपुर के मालकोटी गाँव में हुआ था। मालकोटी गाँव बर्त्वाल वंश के लोगों ने ही बसाया था। चन्द्रकुँवर के पिता ठाकुर भूपाल सिंह एक कुलीन और सम्भ्रांत परिवार के व्यक्ति थे। माता का नाम जानकी देवी था। ठाकुर भूपाल सिंह बर्त्वाल पट्टी तल्लानागपुर के गण्यमान्य व्यक्तियों में से थे। कुछ वर्ष वे मिडिल स्कूल नागनाथ में प्रधानाध्यापक भी रहे। प्राकृतिक सुन्दरता से पूर्ण रमणीक दृश्यों ने मालकोटी गाँव को खूब सजाया और सँवारा। यों तो नैणी देवी और कार्तिक स्वामी के गिरिशिखरों की नंदन छाया में बसा समूचा तल्लानागपुर प्राकृतिक सुषमा के लिये प्रसिद्ध है, लेकिन मालकोटी गाँव घाटी में बसने के कारण प्रकृति की गोद में विहँसता और उल्लसित-सा प्रतीत होता है। मालकोटी के चारों ओर प्रकृति के अनूठे बिखरे चित्र जनमानस का मन मोह लेते हैं। बसंत ऋतु के आने पर और पावस के मेघ बरसने पर तो यह सारी घाटी अद्‌भुत सौंदर्य से निखर उठती है। एक ओर गाँव की उत्तर दिशा में दूर-दूर तक फैले चीड़-वनों की सघनता में डूबे सुनसान वातावरण में कफ्फू और काफलपाक्कू पक्षियों का फैलता-गूँजता प्रियस्वर भीषण सौंदर्य की सृष्टि करता है। तो दूसरी ओर आस-पास के गाँवों में खेतीहर जनमानस का श्रम, समर्पण, साधना, त्याग, आशा, निराशा, करुणा और पीड़ा इस पर्वतीय प्रांतर की नियति को प्रस्तुत करता है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का बचपन प्रकृति के इन्हीं रंगविरंगे दृश्यों के उन्मद वातावरण में बीता। इसी उन्मद वातावरण में चन्द्रकुँवर की काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और उसे दिशा और गति मिली।

बर्त्वाल का असली नाम कुँवरसिंह बर्त्वाल था। लैन्सडाडन, गढ़वाल से प्रकाशित 'कर्मभूमि' के 31 मार्च 1941 के अंक में 'घराट' और 'स्मरण' कविताओं के साथ सर्वप्रथम चन्द्रकुँवर बर्त्वाल कवि नाम छपा। यद्यपि 'कर्मभूमि' में प्रकाशित उक्त अंक के पश्चात् भी कुछ कविताओं के साथ कुँवर सिंह बर्त्वाल नाम छपता

रहा। संभवतः प्रकाशन के लिये ये कविताएँ चन्द्रकुँवर ने 'घराट' और 'स्मरण' कविताएँ प्रेषित करने से पूर्व ही भेज दी हों। पौड़ी से प्रकाशित 'क्षत्रीयवीर' के (1934-35) अंकों में कवि का पूर्व नाम ही छपता रहा।

कवि के पिता भूपाल सिंह बर्त्वाल उडामांडा के निकट स्थित मिडिल स्कूल नागनाथ में प्रधानाध्यापक थे। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की प्रारम्भिक शिक्षा वेसिक स्कूल उडामांडा में ही हुई। मिडिल की परीक्षा उन्होंने नागनाथ से उत्तीर्ण की। हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के लिये वे म्यसमौर हाईस्कूल, पौड़ी में प्रविष्ट हुए। इंटरमीडिएट की परीक्षा उन्होंने डी.ए.वी. कालेज, देहरादून से उत्तीर्ण की। 1939 में चन्द्रकुँवर ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्राचीन भारतीय इतिहास में चन्द्रकुँवर की गहरी रुचि थी। अपनी रुचि को गहन अध्ययन में परिवर्तित करने के लिये उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में एम.ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास) में प्रवेश लिया। लेकिन लखनऊ प्रवास से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल घर लौट आये और घर के निकट ही अगस्त्यमुनि हाईस्कूल में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविता से ज्ञात होता है कि क्षेत्रीय राजनीति के कुचक्र ने उन्हें अनुकूल वातावरण से वंचित रखा। अगस्त्यमुनि हाईस्कूल की प्रबंध समिति के सचिव के दुर्व्यवहार के कारण चन्द्रकुँवर अत्यंत दुःखी रहे। उन्होंने उस सेक्रेटरी के दुर्व्यवहार की कविता लिख कर भर्त्सना की। अस्वस्थता के कारण चन्द्रकुँवर पहले ही दुःख झेल रहे थे, फिर अपनों के दुर्व्यवहार की कचोट तो और भी पीड़ा पहुँचाने वाली होती है। 1941 में चन्द्रकुँवर ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था और वे केदारनाथ मार्ग पर भीरी के निकट मंदाकिनी और कांचनगंगा के तट पर बसे अपने नये गाँव पँवालिया चले गये थे। बस, पँवालिया में उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। लेकिन रुग्णावस्था में भी कवि ने अपनी लेखनी नहीं छोड़ी और यथाशक्ति कविताएँ लिखते रहे। वे अपनी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में बहुत कम भेजते थे। अपने कुछ मित्रों को भेज दिया करते थे। कथाकार यशपाल को भेजे 27 जनवरी, 1947 के अपने पत्र में चन्द्रकुँवर ने लिखा :–

"प्रिय यशपाल जी,

अत्यंत शोक है कि मैं मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ हूँ और बीस-पच्चीस दिन अधिक से अधिक बचा रहूँगा सुबह को एक-दो घंटे बिस्तर से मैं उठ सकता हूँ और इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़ी कविताओं को एक कापी पर लिखने की कोशिश करता हूँ। बीस-पच्चीस दिनों में जितना लिख पाऊँगा, आपके पास भेज दूँगा।"

रुग्णावस्था में भी चन्द्रकुँवर कविताएँ लिखते रहे। उन्हें साफ़-सुथरे रूप में दूसरी कापी पर उतारते रहे। उनके पास दान देने के लिये इतना प्रचुर काव्यधन था कि अपनी कविता में भी उन्होंने इस संबंध में कहा है—

मेरे पास आज इतना धन है देने को
नये फूल हैं पाँवों के नीचे बिछने को।

पँवालिया, बर्त्वाल का नया गाँव जिसे उनके पिता ने ख़रीद लिया था, प्राकृतिक सुषमा से कम न था। वल्कि मालकोटी से कुछ ज़्यादा ही रमणीक। यहाँ मख़मली घास अनेक रंगों के फूल, लाल बुरांस से लदे वृक्षों के जंगल, केदारनाथ की हिममंडित पहाड़ियों की क़तारें, कफ्फू, काफलपाकू, हिलांस, घुगती और भ्रमरों के संगीत की अनुगूँजें और किन्नरियों की छमछम, चरवाहों के अलगोजों की लम्बी सुरीली धुनें, कांचनगंगा अर्थात् डमार नदी की उछलती जलधाराएँ और पास में बहती मंदाकिनी की किलकारियाँ आदि क्या नहीं था ! मेरा विश्वास है कि चन्द्रकुँवर प्रकृति की इसी रमणीयता में डूबते हुए कविताएँ रचते रहे और बीमारी से पूरे सात वर्षों तक जूझते रहे। 14 सितम्बर, 1947 को रविवार की रात्रि में हिमालय का यह गायक और विराट कवि मात्र अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में सदा-सदा के लिये अपना पार्थिव शरीर छोड़ गया। लेकिन बर्त्वाल की कविताएँ, उनके गीत और उनका गद्य साहित्य उन्हें सदा-सदा के लिये भारतीय साहित्य में अमर कर गया।

महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने 'मेरा परिचय' कविता में अपना काव्यात्मक परिचय यों दिया है—

जीवन ने मुझको / प्रभात की भाँति खिलाया / आशाओं ने मुझे
कुसुम की भाँति हँसाया / संध्या ने कर दिया चकित
मुझ को शोभा से / स्निग्ध मरण ने मुझे / निशा की भाँति सुलाया।

कवि का विस्तृत आत्म-परिचय गद्य रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं हो पाया है। जो कुछ औपचारिक जीवनवृत्त उपलब्ध है, उससे कवि के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ता। काव्य कर्म के प्रति एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—"मैं इस बात की कभी परवाह नहीं करता कि कोई मुझे प्यार करता है या घृणा की दृष्टि से देखता है। संसार के रास्ते पर मैं अकेला चलना चाहता हूँ। अकेला चला भी हूँ। अकेले में मेरी शक्ति जाग्रत रहती है। साथी होने से मुझे अपने पर इतमिनान नहीं रहता। और शायद संसार में मुझे किसी वस्तु से मतलब भी नहीं रहा—एक

कविता को छोड़कर।'' आवश्यकता इस बात की है कि कवि के बचपन के दिनों, विभिन्न कड़वे-मीठे अनुभव, क्षय रोग-ग्रस्त होने के कारण, विश्वविद्यालयी जीवन-सन्दर्भ और अगस्त्यमुनि में प्रधानाध्यापकी करते हुए जो कुछ उन्होंने देखा परखा और भोगा तथा पँवालिया में बीते पीड़ादायक वर्षों के जीवन-इतिहास पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जाय। कवि की वंशावली और उनके नाते-रिश्तेदारी के सभी पक्षों को समेट कर विस्तार से प्रकाश डालने की भी ज़रूरत है। मुझे उनके कुछ सहपाठियों से भी मिल कर बातचीत करने का अवसर मिला तथा उनके जीवन की कई महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी ज्ञात हुईं।

ज़िला चमोली में चन्द्रशिला पट्‌टी (जिसे पहले खदेड़ पट्‌टी कहा जाता था) की ऊँची पहाड़ियों के बीच (उस युग में गढ़वाल के गिने चुने दो-तीन मिडिल स्कूलों में से एक) नागनाथ नामक स्थान पर मिडिल स्कूल खुला था। बर्त्वाल के पिता उसी मिडिल स्कूल में हेड मास्टर थे। चौथी कक्षा तक पास के ही प्राइमरी स्कूल उडामांडा में वे तीन वर्ष तक अध्ययन करते रहे।

बर्त्वाल के जन्म ग्राम मालकोटी के निकट बसे कर्णधार गाँव के पंडित भोला दत्त चमोला नागनाथ मिडिल स्कूल में उन दिनों अध्यापक थे। उन्होंने वर्षों तक बर्त्वाल की शैक्षिक गतिविधियाँ स्वयं देखी हैं। हाल में ही मुझे लिखे अपने पत्र में गुरुवर चमोला जी ने बर्त्वाल के बारे में किंचित् जानकारी लिख भेजी है। पत्र में उन्होंने लिखा है—

"कुँवर जी के प्रति मेरा अत्यधिक स्नेह था। मैंने नागनाथ में उन्हें गोद में खिलाया। तव वह सात-आठ वर्ष की अवस्था के थे। वाद में जव मैं मालकोटी स्कूल में अध्यापक रहा तव भी हम लोग खूब मिलते-जुलते रहे। गर्मियों की छुट्टियों में कुँवर जी पंडित तुलसी राम से संस्कृत और ज्योतिष पढ़ने के लिये मालकोटी गाँव में आया करते थे। तुलसी राम जी कुँवर जी की प्रतिभा से काफ़ी प्रभावित थे। उन्होंने मुझको बता दिया था कि ऐसी विलक्षण बुद्धि के व्यक्ति संसार में अल्प काल तक ही जीवित रह पाते हैं। कुँवर जी छुट्टियों में घर आते तो पढ़ने के लिये मुझसे 'वेंकटेश' के विशेषांक ले जाते। रात्रि में जो कविता रचते दिन में मेरे पास आकर सुना जाते। प्रकृति के विविध पक्षों पर रची गई उनकी कविताएँ सुन कर मैं दंग रह जाता था। वस, अव तो कुँवर जी की याद आते ही नेत्रों से अश्रु टपकने लगते हैं।''

उपर्युक्त पत्र से ज्ञात होता है कि बर्त्वाल की संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन में भी रुचि थी। 'वेंकटेश' के विशेषांकों को पढ़कर उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का विशुद्ध ज्ञान अर्जित किया था। साहित्य के प्रति तो छात्र

जीवन से ही उन्हें लगाव था। नियमित रूप से वे श्रेष्ठ कविताएँ रचने लगे थे। स्कूल, कालेज या विश्वविद्यालय में पड़ने वाली गर्मियों या सर्दियों की छुट्टियों में बर्त्वाल शिक्षितों, विद्वानों और गुणीजनों के बीच रहकर समय का सदुपयोग किया करते थे।

डी.ए.वी. कालेज, देहरादून के हिन्दी विभाग के तत्कालीन विभागाध्यक्ष पंडित गयाप्रसाद शुक्ल से भी मैंने बर्त्वाल के बारे में पूछताछ की। शुक्ल जी इन्टरमीडिएट की कक्षाओं में बर्त्वाल के हिन्दी अध्यापक रहे। सौभाग्य से शुक्ल जी मेरे भी गुरु रहे हैं। अतः बर्त्वाल के बारे में बातचीत का सिलसिला एक अजनबी की तरह नहीं बल्कि गुरु और शिष्य के सम्पर्क के आधार पर स्पष्ट और बिना किसी औपचारिकता के आरम्भ हुआ। शुक्ल जी ने एक महत्त्वपूर्ण बात बताई कि बर्त्वाल ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता थे। कई लोगों की जन्म-कुंडली देखकर जो कुछ भी परिणाम बताते थे सब सही निकलता था। बर्त्वाल ने स्वयं अपनी जन्म-कुंडली के गणित के आधार पर अपने ही बारे में जो फलादेश निकाले वे सब सत्य निकले। शुक्ल जी ने बताया कि बर्त्वाल के इलाक़े क कई छात्र देहरादून कालेज में पढ़ने आते थे। वे सब मिलते रहते थे और बर्त्वाल जी के बारे में पूछने पर जानकारी देते थे। देहरादून में बिताये छात्र जीवन के सन्दर्भ में शुक्ल जी ने बताया—"बर्त्वाल एक मननशील छात्र थे। मन लगा कर पढ़ते थे। परीक्षाओं में उन्हें अच्छे अंक मिलते थे। उनकी निबन्ध लेखन की शैली बहुत ही रोचक थी। जब कालेज में हिन्दी साहित्य परिषद की स्थापना की गई, तब गोष्ठियों में बर्त्वाल नियमित रूप से भाग लेते थे। अपनी कविताओं का पाठ करते थे। हिन्दी साहित्य परिषद द्वारा आयोजित एक निबंध प्रतियोगिता में पुरस्कृत उनके 'कविता में कल्पना या जनजीवन' उच्चकोटि के निबंध की मुझे आज भी याद है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'देहरादून' उन्हीं दिनों रची गई थी। वे स्वभाव से संकोची थे, पर उनकी वाणी में मिठास थी। उनके कृतित्व और व्यक्तित्व से मैं तब प्रभावित था। इन्टरमीडिएट की परीक्षा अच्छे अंकों में उत्तीर्ण करके बर्त्वाल 1937 में बी.ए. की पढ़ाई करने के लिये इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो गये थे। फिर वे कभी देहरादून नहीं आये। न हम लोग कहीं मिल ही सके। लेकिन उनकी गंगा-प्रवाह की भाँति भाषा और भावों की वेगवती काव्यधारा से मैं आज भी प्रभावित हूँ। चाहता हूँ किसी योग्य शिष्य से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविता पर शोध-कार्य कराऊँ। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'सरस्वती' पत्रिका में बर्त्वाल की कविता के बारे में एक उपयोगी लेख भी लिखा था।" राहुल सांकृत्यायन ने बर्त्वाल पर जो लेख लिखा था वह मैंने पढ़ा था और उसी लेख को पढ़ कर मैं कवि बर्त्वाल

के जन्म गाँव मालकोटी को देखने भी गया था। मैं समझता हूँ मालकोटी यात्रा की एक झलक यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा। इससे कवि के जन्म स्थान, परिवेश एवं पर्यावरण पर किंचित प्रकाश पड़ सकेगा।

मालकोटी-यात्रा

जून का महीना। हम छात्रों के लिये ग्रीष्मावकाश के मनमौजी दिन। घूमने की दृष्टि से और कवि बर्त्वाल का गाँव देखने की इच्छा से मैं और मेरे मित्र श्री लक्ष्मीदत्त कांडपाल एक दिन दाणकोट गाँव के अपने सहपाठी कुँवर सिंह के घर पहुँचे। दूसरे दिन प्रातः काल ही हम तीनों मालकोटी गाँव देखने निकल पड़े। सूरज की किरणें अभी आस-पास के शैल-शिखरों पर ही चमचमा रही थीं। चोपता खाल से मालकोटी गाँव तक का रास्ता सघन चीड़ बनों को चीरती हुई सड़क। हम लोग मस्ती से चले जा रहे थे। घाटी में बसे कई गाँवों को हम देखते थे। मेरे और लक्ष्मीदत्त के लिए वह इलाक़ा, वे गाँव बिल्कुल नये थे। कुँवर सिंह हमें उन गाँवों का परिचय दे रहे थे। बमोली, कर्णधार और मालकोटी पास-पास बसे गाँव जब उन्होंने इशारे से दिखाए तो आत्मिक खुशी हुई उन गाँवों को देख कर। बमोली गाँव के श्री बद्रीदत्त बमोला फीजी जाकर बद्री महाराज नाम से विख्यात हुए। कर्णधार अच्छे अध्यापकों के लिए जाना जाता था। जिनमें श्री भोला दत्त चमोला मेरे गुरु रह चुके थे। गुरुजी के गाँव को देखकर मन में श्रद्धा उमड़ पड़ी। मालकोटी गाँव को देखने की तो हमारी हार्दिक इच्छा थी ही जहाँ हिन्दी कवि चन्द्रकुँवर ने जन्म लिया।

हमलोग उस अद्‌भुत प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर घाटी में उतर रहें थे। सूरज की किरणें बमोली, कर्णधार और मालकोटी में अपनी चमचमाहट बिखेर रही थीं। लगता था सूरज की इन किरणों की चमचमाइट में मालकोटी तैर रही है। सूरज की रोशनी में गाँवों की वह घाटी भोर होने की खुशी में थिरकती हुई प्रतीत हो रही थी। हमलोग मालकोटी गाँव में पहुँचे। गाँव की एक महिला से पूछने पर बर्त्वाल के मकान की जानकारी मिली। उस सुन्दर मकान को देखकर हमें सन्तोष मिला। मकान के आँगन में हमलोग काफ़ी समय तक बैठे भी। दो-तीन बच्चे हमारे पास मँडराने लगे थे। संभवतः मकान में उस वक़्त कोई नहीं था। किसानों का जीवन जो ठहरा। सुबह होते ही पुरुष और महिलाएँ खेतों में चली गई थीं। मकान के दायें-बायें फल और सब्ज़ियों की बाग़वानी थी। मकान आलीशान और संपन्न परिवार का परिचय दे रहा था। मन में यही कुछ भाव थे कि प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की ही भाँति के एक हिन्दी कवि का जन्म स्थान है यह।

कवि के जन्म स्थान पर कुछ क्षण बिताकर हम लोग वहाँ से एक सन्तोष, एक आनंद लेकर लौट पड़े। लौटते हुए बातचीत के सिलसिले में एक सज्जन ने बताया—सात वर्षों तक निरन्तर क्षय रोग से जूझते हुए जिस पँवालिया में कवि ने दम तोड़ा उस स्थान को देखने की इच्छा भी मन में थी। और यह इच्छा गर्मियों की छुट्टियों में संभव हो पाई। कवि के तत्कालीन परिवेश पर प्रकाश डालने की दृष्टि से यहाँ पँवालिया यात्रा का विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पँवालिया : एक दर्द भरी याद

पँवालिया !

रुग्णावस्था में जहाँ कवि ने प्रकृति की सुन्दरता का सहारा लेकर मृत्यु से अनवरत संघर्ष करते हुए अपने जीवन के अन्तिम वर्ष हिन्दी काव्य को समर्पित किए।

साथ चलते-चलते अगस्त्य मुनि के निवासी एक अध्यापक कह रहे थे—"अगस्त्य मुनि के निकट भीरी के उस पार मंदाकिनी तट पर बसे पँवालिया को कवि के परिवार के लोगों ने अपने मूल गाँव मालकोटी के बाद खेती-बाड़ी की सम्पन्नता प्राप्त करने की दृष्टि से निवास बनाया था। पँवालिया, जहाँ काफ़ी अन्न उगाने के लिए उपजाऊ खेत हैं। सेरे हैं। पेड़-पौधों की भरमार है। कहते हैं एक समय में पँवालिया लोगों के अधिकार में था।

भूमिधर लोगों को किन्हीं कारणों से आपदाओं ने घेर डाला। वे एक लाला को मात्र एक हज़ार रुपयों में पँवालिया सौंप कर चले गये। लाला ने एक हज़ार रुपयों में पँवालिया बर्त्वाल परिवार को बेच दिया।

यह भी कहा जाता है कि भूमिधर लोगों ने ग़रीबी से तंग आकर दुर्दिनों में पँवालिया छोड़ा। वहाँ की मिट्टी लेकर देव-स्थलों को चढ़ाई और बद्दुआ दी कि ये उपजाऊ खेत, ये पेड़ पौधे और आलीशान भवन किसी परिवार को न फबें।

बर्त्वाल परिवार को यह बद्दुआ-कांड ज्ञात नहीं था। उनका सारा परिवार वहाँ एक ज़मींदार के रूप में रहने लगा। कुछ वर्षो में ही वहाँ बद्दुआ के बद असर ने सचमुच बर्त्वाल परिवार को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ कर दिया।

बर्त्वाल परिवार के सदस्यों की एक-एक करके मौतें होनी शुरू हुईं। कहा जाता है कि जब से बर्त्वाल परिवार ने पँवालिया में डेरा डाला तभी से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल भयंकर बीमारी की चपेट में आए। कभी परिवार के बूढ़े मरते, कभी जवान मरते।

परिवार के सदस्यों के निधन से दुःखी और अपनी बीमारी से प्रताड़ित अट्ठाईस वर्षीय युवक चन्द्रकुँवर ने भी अंततः प्राण त्याग दिए थे।''

कितना बदनसीब रहा पँवालिया बर्त्वाल परिवार के लिए। गर्मियों में सायंकाल सात बजे के हल्के अन्धेरे में बारिश की हल्की बूँदों में भीगते-भीगते मैं केदारनाथ मार्ग पर स्थित भीरी बस अड्डे से पैदल मन्दाकिनी का पुल पार करके पँवालिया की ओर बढ़ता जा रहा था। डमार गाँव के अध्यापक श्री चौहान ने पँवालिया जाने का मेरा मंतव्य जानना चाहा। मैंने उन्हें बताया कि मैं हिन्दी के कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल-स्मारक के दर्शन करने पँवालिया जा रहा हूँ। सुनकर वे गद्गद हुए। बोले—आज रात आप हमारे गाँव में रहें तो बेहतर रहेगा। सुबह पँवालिया चले जाइएगा।

मैंने कहा—मैं स्मारक के दर्शन जब तक नहीं कर लेता तब तक लक्ष्य से विचलित नहीं हो सकता। आप मुझे पँवालिया जाने दें।

वे सुबह चार-पाँच साथियों के साथ पँवालिया आने का आश्वासन देकर अपने गाँव की ओर चल दिये। मैं पँवालिया की ओर बढ़ने वाली पगडंडी पर आगे बढ़ता हुआ हल्की बारिश की फुहारों में भीगता हुआ बर्त्वाल परिवार के उस आलीशान भवन पर निगाहें डाले आगे बढ़ता आ रहा था। भवन से कुछ दूरी पर रास्ते में ही जलधारा है। जलधारा पार करके मैं आगे बढ़ा तो एक हल्की सिहरन हुई बदन में। शायद इसलिए कि हिन्दी के उस महान सेवी एवं तपस्वी का निवास काफ़ी निकट था और मैं उसे देखने के लिए उत्सुक एवं उन्मत्त था। आँगन में पहुँचा तो एक कमरे की खिड़की से लैंप की रोशनी चमकती हुई दिखाई दी—लगा कि कोई वहाँ है अवश्य। आँगन से आवाज़ दी तो कठैत जी बाहर आए। अपना परिचय देने पर मुझे कठैत जी ने आदर के साथ कमरे में बिठाया। बातचीत की और चन्द्रकुँवर की स्मृति में कई बातें सुनाईं।

मैंने कहा—कठैत जी, आप एक हिन्दी सेवी के स्मारक की सुरक्षा कर रहे हैं। यह प्रसन्नता की बात है।

मैंने वर्षा-गीत की पंक्तियाँ गुनगनाईं —

नभ में वर्षा की छवि छाई,
उर में पावस की ऋतु आई,
मेघों के गद्गद स्वर सुनकर
उर में पावस की रितु आई।

कठैत जी बोले—पँवालिया पर भी चन्द्रकुँवर वर्त्वाल ने कविता लिखी है। उसे सुनाइए। सुनाता हूँ, कहकर मैं सुनाने लगा—

मेरे गृह से सुन पड़ती गिरिवन से आती
हँसी स्वच्छ नदियों की सुन पड़ती विपिनों की
मर्मर ध्वनियाँ, सदा दीख पड़ते द्वारों से...।

कठैत जी ने बताया—"पँवालिया का मकान और भूमि उत्तर प्रदेश सरकार ने ख़रीद ली है। अब वहाँ पर कृषि पौधशाला विभाग की पौधशाला स्थापित हो गई है। हम लोग सरकारी कर्मचारी हैं।" सुनकर मुझे खुशी तो हुई कि कवि की तपस्यास्थली आबाद रहेगी। लेकिन मैं यह महसूस करने लगा कि पँवालिया में कवि का स्मारक बनाने की पेशकश करनी बहुत ज़रूरी है। साहित्य में रुचि रखने वाली पीढ़ी के लिए यह हिन्दी-तीर्थ अवश्य प्रेरणास्थली बनेगी।

हम भोजन कर चुके थे। काफ़ी रात हो गई थी। कठैत जी अपने कमरे में चले गए। झींगुरों की झनकार सुनाई देती थी। डमार गाड (कांचन-गंगा) और मन्दाकिनी का जल-संगीत। पेड़-पौधों से टकराते हवाओं के झोंके और अन्धेरी सुनसान रात। न जाने कवि ने ऐसी कितनी रातें जाग-जाग कर बिताई होंगी—हिन्दी कविता के सृजन में। सोचते-सोचते मैं सो गया था। भोर हुई तो पक्षियों की चह चहाहट ने सुबह जल्दी ही मुझे जगा दिया। कमरे से बाहर निकला तो दुमंज़िलें और खूबसूरत, कई खिड़कियों वाले हवादार मकान को देखकर मुझे गढ़वाल के कारीगरों की कारीगरी को दाद देनी पड़ी। कवि ने अपने घर के बारे में यों लिखा है—

ये रत्नों से शैल भरे
यह शैलों से भरी मही
हिमगिरि के अंचल में है
मेरा घर भी यहीं कहीं।
मेरे घर पर चढ़ फैली
द्राक्षा की एक लता
और दूर कलरव करती
जाती है चंचल सरिता।
लहरों में जिसके प्रतिपल
हंसों की पाँतें तैर रहीं
इसी नदी के तट पर है
मेरा घर भी यहीं कहीं।

और जब मैंने गिरि शिखरों की ओर निगाहें डालीं तो सामने हिमण्डित शैल शृंग चमकते हुए दिखाई दिए। मेरा मन पुलकित हो गया। कठैत जी भी जाग गए थे। थोड़ी ही देर में उन्होंने चाय तैयार कर ली थी। चाय का गिलास मेरी ओर बढ़ाते हुए बोले--रात आराम से तो बीती ?

मैंने कहा--मुझे नींद नहीं आई। सोचता ही रहा। अब तो पँवालिया में ही साहित्य-साधना करने की इच्छा होती है। मन करता है यहीं जीवन के शेष वर्ष बिताऊँ।

तब जो दाड़िम डाली छोटी थी आज वह एक बड़ा पेड़ है। बस, उसी की छाँह में बैठकर हम लोगों ने चाय पी। चाय पीकर कठैत जी और मैं मन्दाकिनी और डमार गाड के बीच सेरों में घूमने निकल पड़े और चर्चा में डूबे रहे।

कठैत जी से मैंने पूछा--आपको पँवालिया में रहना कैसा लगता है ? वे बोले--अच्छा लगता है। हम लोग तो सरकारी नौकर हैं। जहाँ सरकार भेजती है वहीं काम करना पड़ता है। लेकिन पँवालिया में रहते हुए मनोबल को सहारा मिलता है। खुशी हमेशा साथ रहती है। हिन्दी के महान कवि की तपस्यास्थली में रहने का सौभाग्य मिल रहा है। वैसे लोग कहते हैं कि पँवालिया में भूत-पिशाच रात में आवाज़ें देते हैं। लेकिन अपने कुलदेवता की कृपा से मैंने अब तक न कोई आवाज़ सुनी और न रात में कोई भूत-पिशाच ही देखा। इस डमारगाड के तट पर गाँव के लोग शव जलाते हैं लेकिन हम लोग रात दस-ग्यारह बजे तक सेरों में काम करते हैं। कहते हैं चन्द्रकुँवर इन सेरों के किनारे पड़ी इन बड़ी-बड़ी शिलाओं पर बैठकर कविताएँ रचते थे। सामने के इन घराटों की ओर देखकर कविताएँ रचते और पढ़ते थे।

मैंने कहा--'घराट' उनकी एक प्रसिद्ध कविता है। घराट के माध्यम से कवि ने सामाजिक विषमता के प्रचारक पोषक दैत्यों पर तीखा व्यंग्य किया है--

मचा हुआ है हाहाकार घूमते पत्थर
और उनके भीतर से छितर रही है बाहर
श्वेत हँसी मरघट की-सी।

बातचीत करते हुए हम लोग डमारगाड पर बने पुल को पार करके दूसरी तरफ़ पहुँचे।

बातचीत के दौरान मैं सोचता ही रहा कि हिन्दी भाषा को सरलता और अभिव्यक्ति कौशल की महान क्षमता प्रदान करने वाले उस कवि के काव्य का व्यापक प्रचार होना बहुत ज़रूरी है। उस कवि का स्मारक पँवालिया में बनाया जाना चाहिए। उनकी जन्मस्थली मालकोटी गाँव में भी स्मृतिस्तंभ बनाया जाना ज़रूरी है।

अनायास क्षणभर के लिये केदारनाथ की हिममण्डित पहाड़ियों की चमकती हुई वर्फ देखकर मैं चकित था। इन हिमशिखरों पर चमकने वाली सूरज की किरणें मैं न देख पाया। थोड़ी देर में ही बदली छा गई थी। चन्द्रकुँवर की कई कविताओं में प्रकृति के ऐसे कई अनूठे चित्र चित्रित हुए हैं। लौट कर हम दोनों मकान पर पहुँचे, तो मैंने चन्द्रकुंवर बर्त्वाल की यम (महाअतिथि) कविता का पाठ आरम्भ किया–

पाँच-छः दिनों तक निरंतर चन्द्रकुँवर–एवं उनके काव्य की चर्चा होती थी। बस, यही क्रम चलता रहा। पँवालिया में रहते हुए मुझे एक ओर पीड़ा कचोटती रही तो दूसरी ओर संतोष मिलता रहा।

एक दिन मैं पँवालिया को अलविदा कह कर वहाँ से लौट आया।

समाज-सेवी कवि बर्त्वाल

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में एक महत्त्वपूर्ण पहचान बना लेने वाले कवि बर्त्वाल की दर्दभरी ज़िन्दगी और समाजसेवा से सम्पूर्ण हिन्दी जगत अभी तक अनभिज्ञ है। छात्र जीवन में अपने पारिवारिकजनों से दूर, बहुत दूर रहकर भी बर्त्वाल मन से सदैव अपनों के बीच रहते रहे। उन्होंने अपने सभी पर्वतीयजनों की शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक कठिनाइयों को निकट से देखा और उन्हें दूर करने के लिये क़दम उठाये।

पर्वतीय क्षेत्रों में शिक्षा की समुचित व्यवस्था न होने पर समाज में कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं अनेक दुर्बलताओं का बाहुल्य रहा। जो समाज को कमज़ोर बनाकर तोड़ता रहा है। पराधीनता के उस युग में गढ़वाल में शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यालय बहुत दूरी पर स्थित होते थे। पूरे ज़िले में सिर्फ़ नागनाथ और काँसखेत में ही दो मिडिल स्कूल थे। हाई स्कूल की पढ़ाई के लिये श्रीनगर अथवा पौड़ी आना पड़ता था। हाई स्कूल के उपरांत इण्टरमीडिएट के लिये बरेली, देहरादून तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिये प्रयाग या लखनऊ जाना पड़ता था।

स्वयं कवि बर्त्वाल को मिडिल तक की शिक्षा के लिये नागनाथ, हाई स्कूल की पढ़ाई के लिये पौड़ी, इण्टरमीडिएट की शिक्षा के लिये देहरादून और विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिये प्रयाग और लखनऊ रहना पड़ा था। परिवार एवं परिवेश की दूरी के कारण कवि मानसिक पीड़ा के साथ-साथ शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त रहा है। इस भावभूमि पर आधारित कवि की कई कविताएँ पठनीय हैं। यह कितना दुःखद है कि वर्षों तक प्रवास के अकल्पित वातावरण में रहने के कारण ही कवि को क्षय रोग ने घेर लिया था। इसी रोग के कारण कवि को लखनऊ विश्वविद्यालय की

एम.ए. की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। रुग्णावस्था में भी घर पर समय नष्ट न करते हुए उन्होंने अपने क्षेत्र में अगस्त्य मुनि नामक स्थान पर हाई स्कूल की स्थापना की। स्कूल की प्रधानाध्यापकी का भार स्वयं वहन किया। इससे उस क्षेत्र के तथा आसपास के छात्रों को वह परिवेशगत एवं मानसिक पीड़ा नहीं सहनी पड़ी जो कवि बर्त्वाल को सहन करनी पड़ी थी। स्वच्छ एवं स्वस्थ वातावरण में उस क्षेत्र के छात्र अपने घर के पास विद्यार्जन करते रहे। स्कूल में खेल, संगीत, नाटक, भाषण आदि गतिविधियों के संचालन से छात्रों में नई लहर एवं नई स्फूर्ति आने लगी। इस प्रकार अपने क्षेत्र में तथा घर के पास रह कर ग़रीबी जीवन बिताने वाले परिवारों के बच्चे भी शिक्षा ग्रहण करने लगे थे। चन्द्रकुँवर के सहयोगी अध्यापक भी मेधावी एवं अनुभवी थे। श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल तथा श्री उमेशचन्द्र मलासी (अब दोनों स्वर्गीय) ने बर्त्वाल जी को स्कूल के संचालन में भी समुचित सहयोग दिया। कालान्तर में दोनों ही अध्यापक विद्वता के क्षेत्र में तथा पदोन्नति के क्षेत्र में काफ़ी आगे बढ़े। स्वयं अत्यधिक रुग्ण रहने के कारण कवि ने अपने सखा श्री बुद्धिवल्लभ थपलियाल को बुला कर हाई स्कूल की प्रधानाध्यापकी सौंपी। क्षेत्रीय जनसम्पर्क के दौरान कवि ने अपने वंश की थोकदारी (उच्च वर्ग) प्रथा समाप्त करने का प्रयत्न भी किया। उन्हें पर्वतीय समाज में ऊँच-नीच प्रथा पसन्द न थी। उस क्षेत्र में उन्होंने उसे तोड़कर ही चैन लिया। नये युग की स्तुति गाने वाले कवि ने स्वाधीनता के लिये भी कार्य किया।

1946 में आम चुनाव हुआ। क्षेत्र में एक ओर थोकदारों (उच्च वर्ग) द्वारा समर्थित अंग्रेज़ सरकार और दूसरी ओर कांग्रेस का आज़ादी का नारा। परन्तु चन्द्रकुँवर ने अपने वंश के लोगों (थोकदारों) का साथ नहीं दिया। अपितु कांग्रेस उम्मीदवार डा. कुशलानन्द गैरोला के लिये दिन-रात कार्य किया। फलतः डा. गैरोला चुनाव में विजयी रहे। थोकदार ख़ानदान से सम्बन्धित, हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक होते हुए भी, कवि बर्त्वाल आम आदमी को अपने परिवार का-सा ही मानते थे। वे उच्च शिक्षा द्वारा अपने ज्ञान और अनुभवों को दूसरों को अर्पित करते रहे। स्कूल के ग़रीब एवं ज़रूरतमन्द छात्रों की मदद करते रहे।

यह एक विडम्बना ही समझिये कि हिन्दी के उच्चकोटि के कवि के रूप में विख्यात होने पर भी अपने क्षेत्र में उनकी पहचान बहुत कम थी। क्योंकि क्षेत्रीय लोगों में तब साहित्य की इतनी समझ न थी।

कवि बर्त्वाल में स्वावलम्बी बने रहने की ललक थी। वे तकली पर ऊन कातते थे। दूसरों को तकली कातना सिखाते थे। तकली कातते हुए मित्रों या छात्रों के

साथ शंकरभाष्य, उपनिषद्, इतिहास और संस्कृति सम्बन्धी चर्चाएँ भी करते रहते थे। इस प्रकार की चर्चाओं से ज्ञान का प्रसार होता था। चन्द्रकुँवर की कविताओं में भी प्राचीन भारतीय वाङ्मय का प्रभाव झलकता है।

आज भी अनेक विद्वान चन्द्रकुँवर के संस्कृत भाषा-साहित्य तथा ज्योतिष-ज्ञान की चर्चा करते हैं। दूर-दूर से लोग बर्त्वाल के पास जन्मकुण्डली दिखलाने के लिये आते थे। ग्रह-नक्षत्र फलादेश आदि बर्त्वाल के अनुसार सही उतरते थे। राजपूत परिवार के बर्त्वाल के पांडित्य ने गढ़वाल के पण्डितों के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत की थी। अपनी जन्मकुण्डली के फलादेश जानकर ही उन्होंने विवाह नहीं किया था। अपने मित्रों को अपनी बीमारी के कारण मृत्यु का आभास वे पहले ही दे चुके थे।

असहनीय रुग्णता के कारण बर्त्वाल ने हाई स्कूल की प्रधानाध्यापकी के लिये अपने सहपाठी और मित्र श्री बुद्धिबल्लभ थपलियाल, एम.ए., एल.टी. को अगस्त्य मुनि बुलाया तथा उन्हें स्कूल के संचालन का भार सौंपा। उन्हें भय था कि स्कूल बंद न हो जाए और आसपास के ग़रीब छात्र शिक्षा प्राप्त करने से वंचित न रह जायें। थपलियाल जी ने मित्र द्वारा प्रदत्त दायित्व बखूबी निभाया भी। चंद्रकुँवर अपने माता-पिता के पास रहने लगे थे। श्री थपलियाल, श्री नौटियाल, श्री मलासी तथा छात्र उनसे मिलने पँवालिया आते रहते थे। यह एक संयोग ही जानिये कि गढ़वाली भाषा के विद्वान और गढ़वाली शब्दकोशकार श्री बलदेव प्रसाद नौटियाल से इन पंक्तियों के लेखक की लोदी रोड, नई दिल्ली में यदाकदा भेंट होती रहती थी। श्री नौटियाल का कहना था कि चन्द्रकुँवर जी छात्रों में अपनी लोकप्रियता और विद्वता सिद्ध कर चुके थे। कविता के साथ-साथ उन्होंने गढ़वाली समाजसेवा का गुरुतर कार्य भी किया।

श्री उमेशचन्द्र मलासी से इन पंक्तियों के लेखक की भेंट अगस्त्यमुनि में आयोजित रामलीला में हुई थी। श्री मलासी से ज्ञात हुआ था कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल क्षेत्र में सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्जागरण लाने के लिये प्रयत्नशील रहे थे। अगस्त्य मुनि में विषुवत संक्रांति के मेले के अवसर पर उन्होंने ही रामलीला के आयोजन का शुभारम्भ करवाया था। चन्द्रकुँवर स्वयं एक अच्छे सितार वादक भी थे। भूपाली, वागेश्री, दुर्गा और भैरवी रागों का उन्हें अच्छा ज्ञान था। सितार पर इन रागों की झंकार सुनकर श्रोता एवं पारखी झूम उठते थे। केदारनाथ की यात्रा के दौरान स्कूल में संगीत गोष्ठियाँ खूब सफल रहती थीं। प्रयाग और लखनऊ से भी बर्त्वाल के कलाकार मित्र अगस्त्य मुनि आते रहते थे। संगीत का वातावरण बना रहता था और संगीतकारों का जमघट भी जुटा रहता था। हिमालय के गायक के

रूप में ही नहीं, अपितु अल्पायु में ही जीवन त्याग देने वाले कवि वर्त्वाल सीमान्त क्षेत्रों तथा केदारघाटी आदि में समाजसेवी के रूप में काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने शिक्षा, साहित्य, संगीत, स्वावलम्बन, सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में इतनी छोटी आयु में अद्‌भुत कार्य सम्पन्न किये थे। पर हिमालय का वह विराट ज्योतिपुरुष अल्पायु में ही इस संसार से विदा हो गया था। अपने समाज के लिये उनका दिव्य एवं महत्त्वपूर्ण योगदान इस धरती पर सदियों तक स्मरणीय रहेगा।

2

साहित्यिक मूल्यांकन

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य में आत्माभिव्यक्ति की सुंदरता और पर्वतराज हिमालय की दमकती-चमकती आभा यत्र-तत्र छिटकी हुई स्पष्ट प्रतीत होती है। कवि के नये छंदों में निर्मित गीतों में आत्मविश्लेषण और सौंदर्यमयी चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति की गोद में जन्मने, पलने, बालपन की अबोध किलकारियाँ भरने, विभिन्न नैसर्गिक सुषमास्थलों के वैभव के बीच शिक्षा प्राप्त करने के अनुभव कवि के काव्य की मूलचेतना और वस्तुपूरक शैली और शिल्प की अभिव्यंजना की प्राणशक्ति है। कवि के गीतों में सुख-दुख, आशा-निराशा, प्रेम-विरह, ईश्वर-भाग्य, करुणा-वितृष्णा, तिमिर-प्रकाश, पाप-पुण्य, मिलन-विदा, अमृत-विष, शांति-कोलाहल, घृणा आदि मानवीय मनोवेगों-संवेगों की सुंदरतम अभिव्यक्ति हुई है। यौवन की आहुति देने की व्याकुलता में कवि का जीवन-दर्शन इन पंक्तियों में अभिलक्षित होता है—

> मेरे पास आज इतना धन है देने को
> नये फूल हैं पाँवों के नीचे बिछने को !
> नये मेघ हैं, नयी चाँदनी, है नवयौवन
> निर्मल मन है, और स्नेह से छल-छल लोचन !

जीवन के विविध रंगों से सज्जित गीतों और कविताओं द्वारा कवि ने अपना वह सारा साहित्य-धन भारतीय साहित्य-समाज पर न्यौछावर किया है। इन गीतों में कवि के हृदय की रंगबिरंगी अनुभूतियाँ ही जीवन-दर्शन के रूप में रूपायित हुई हैं।

प्रकृति के अनूठे और बेजोड़ दृश्यों की श्रेणी में कवि के जीवंत शाश्वत प्रकृति चित्र, जो पर्वतीय जनजीवन के अत्यंत निकट हैं, आधुनिक हिन्दी कविता की समृद्धि की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। दरअसल चन्द्रकुँवर ऐसे समय में कविता के क्षेत्र में अवतरित हुए, जब हिन्दी कवियों ने रूढ़िवादिता के पुराने बंधनों से मुक्त

होकर स्वच्छंदतापूर्वक प्रकृति के सौंदर्य की आनंदानुभूति में नदी, निर्झर, मृग, भ्रमर और पक्षियों के साथ क्रमशः उछलना, कूदना, चौकड़ी मारना, गुनगुनाना और चहचहाना चाहा था। स्वच्छंद प्रवृत्ति के कवि को प्रकृति साधारण दृश्यों की तरह नहीं दिखाई देती, बल्कि भावों की गहराई के साथ प्रकृति का जो रूप मानवीकरण के रूप में उभरकर सामने आता है, वह उसे प्रतिबिंबित और चित्रित करता है। 'जीतू' कविता प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण के साथ-साथ तरल मानवीय संवेदनाओं की भी द्योतक है, जो बार-बार मानवमन को कचोटती है।

इसी देश में रहता था वह, याद मात्र ही
आज शेष है जिसकी पृथ्वी की आँखों में।
वह चरवाहा था गिरि के शिखरों का वासी
किन्नर-स्वर से, अमर रूप से, मारुत-बल से
शिव-पवित्र कैलास-शृंग-सा निर्मल पावन
मुरलीधर-सा ऊपर, मधुरवंशी वादन से।
उसके मुख पर थी हिमगिरि की दीप्ति चमकती
आँखों में थी शरदनिशा की कल कोमलता
वाणी में वर्षा के मेघों की जलमयता
चपल चाल में थी बाँजो-सी अडिग कठिनता।

प्रकृति संबंधी उनकी सभी कविताएँ मधुर, कोमल, शीतल चन्द्रिका से पूर्ण तो हैं ही, साथ ही उनमें जन जीवन की कसक भी अभिव्यंजित हुई है—

हे मेरे प्रदेश के वासी
छा जाती बसंत जाने से
जब सर्वत्र उदासी
झरते झर-झर कुसुम तभी
धरती बनती विधवा-सी।
गंध-गंध अलि होकर म्लान
गाते प्रिय समाधि पर गान।

आंतरिक भावों की सहज अभिव्यक्ति के रूप में निसृत ये कसक भरी पंक्तियाँ अंतस्तल को छू लेती हैं। विश्व कविता-संसार में भारतीय कविता का प्राण ही प्रमुख करुणा-वेदना है। रसों में करुण रस ही मुख्य माना गया है, शेष उसके विकार मात्र हैं। कवियों की दृष्टि में उनके मधुरतम गीतों में उनके सबसे वेदनापूर्ण विचार व्यक्त होते हैं। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा की अधिकांश रचनाओं में वेदना

ही मुख्य स्वर के रूप में उभर कर सामने आई है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की अधिकांश रचनाओं में करुणा और वेदना की चरम अभिव्यक्ति हुई है। यह गीत द्रष्टव्य है–

मुझे प्रेम की अमरपुरी में
अब रहने दो
अपना सब कुछ देकर
कुछ आँसू लेने दो।
प्रेमपुरी नित जहाँ रुदन में
अमृत झरता
जहाँ सुधा का स्रोत
उपेक्षित सिसकी भरता।
जहाँ देवता रहते लालायित
मरने को।

'बंसत' कविता में कवि ने अपनी उन्मद वाणी के माध्यम से प्रकृति के उन्मद प्रतिबिंबों एवं चित्रों के साथ एक अनूठी अभिव्यक्ति शैली को जन्म दिया है। ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

रोवेगी रवि के चुम्बन से
अब सानंद हिमानी
फूट उठेगी अब गिरि-गिरि के
उर से उन्मद वाणी।

गरजते हुए बादलों के बीच खुद भी बादल बन गरज-गरज कर बरसता हुआ, वारिश की बौछारों में भीगता, खूब भीगता हुआ, कफ्फू, काफलपाक्कू के गान में आकंठ डूबा हुआ, मंदाकिनी, ऋषिपर्णा, गोमती और गंगा-यमुना की जलधाराओं के कलकल निनाद में कुछ समेटता-सँवारता हुआ, बासंती दोपहर में उन्मत्त, जेठ की तपन में तपता-झुलसता, घराट के भैरव रव में छिपे हुए दैत्य की भयंकर हँसी देखता हुआ और हिमालय की तलहटी में दूर-दूर तक फैली सघन चीड़ और देवदारु द्रुमों पर छिटकती हुई उजली धुली चाँदनी रातों की चटख में टकटकी लगाता हुआ कवि गंगाधारा की भाँति धरती पर अवतरित हुआ है।

हिमालय के असीम सौंदर्य की गरिमा पर गर्व करता हुआ कवि गंधपराग लिये हुए 'सबके जीवन में शांति व्याप्त हो' का मंत्र उच्चारित करता हुआ स्वयं शांति-वन में विलीन हो गया। प्रकृति के विभिन्न रूपों में अपनी छाया देखने वाले कवि की

प्राणवान अभिव्यक्ति करुणाकलित और आकुलित दोनों प्रकार की प्रकट हुई है। प्रकृति की सुंदरता से आधुनिक हिंदी कविता का अभिषेक करने वाले कवियों में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल भी एक हैं। मेघछवि के कतिपय चित्र द्रष्टव्य हैं—

पत्ते-पत्ते शाख-शाख पर बैठा बादल
छिद्र-छिद्र में यह नवीन वर्षा का बादल !

और—

सोह रहा बादल के मुख पर
रंग-बिरंगा सूर्य मनोहर
पीछे से रथचक्र घर्घरित
उमड़ आ रही घटाघन अमित
प्रभो, तुम्हारी जय कहकर !

नदी के लिये कवि की वाणी...

वह तट पर उल्लास उछाल छलक कर बहती
पत्थर में वह फूल खिला फेनिल हो हँसती।

बादलों के रूप की पहचान कवि की सूक्ष्मदृष्टि के रूप में यों व्यक्त हुई है—

सुन घन-गर्जन छितर दौड़ती
गौ-समूह-सी बदली।

और फिर घनगर्जन का परिणाम—

मूर्छित हुई घास घनरव से
ऊपर नभ में गरजे बादल
भू पर मूर्छित घास सुकोमल
लगी रही धरती के उर से।

दूर कहीं अपने प्रिय का परिवेश अनुभव करते हुए मेघमन का उत्पीड़न इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है—

झर रहे होंगे वहाँ भी
ये उमड़ते मेघ लोचन।
घूमते वन पर्वतों पर
विरह से अश्रांत तन-मन
कर रहे होंगे वहाँ भी
तो धरा में पीर सिंचन

बादलों के बीच बिजली कौंधने का दृश्य पढ़कर सहसा मन कौंधने लगता है—

मेघपुंज में खेल रही है
एक ज्योति की काल नागिनी
बार-बार डसती बादल को
ज्योतित करती अंधकार को
अशनि तीक्ष्ण उदीप्त फणों से
वह प्रकाश की काल नागिनी !

और

स्वच्छ शिखर हिमगिरि के धीरे-धीरे जिनसे
निकल रहे हैं बादल कमल-वनों से जैसे।

'मेघकृपा' की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

जिन पर मेघों के नयन गिरे
वे सबके सब हो गये हरे

वर्षाऋतु के आने पर कवि सहसा व्यथित हो जाता है–

नभ में वर्षा की छवि छाई
उर में पावस की रितु आई–
बरसी जब शृंगों पर वर्षा
उर में व्यथा जग गई सहसा।

जब देश की राजनीति में नया मोड़ आ रहा था, पुराने परंपरावादी बंधन तोड़े जा रहे थे, शोषण और गुलामी के विरुद्ध आवाज़ उठ रही थी, तब हिन्दी कविता में भी प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने का यत्न किया जा रहा था। प्राचीन भावधारा, छंदबद्धता, रूढ़ियों आदि को ख़त्म किया जा रहा था। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये लेखन में भी संघर्ष किया जा रहा था। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने 'जयगान', 'नव-प्रभात', 'नवयुग' आदि कविताओं में स्वतंत्रचेता युग की भावधारा अभिव्यंजित की है। 'नवयुग' कविता की ये प्रगतिशील पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

आओ बर्बरता के शव पर अपने पग धर
खिलो हँसी बन कर पीड़ित उर के अधरों पर।
करो मुक्त लक्ष्मी को धनियों के बंधन से।
खोलो सबके लिये द्वार सुख के नंदन के।
दो भूखों को अन्न और मृतकों को जीवन।
करो निराशों में आशा का, बल का वितरण।

आओ हे नवीन युग आओ हे सखा शांति के
चलकर झरे हुए पत्रों पर गत अशांति के।

इसी प्रकार कवि ने 'मैकाले के खिलौने' कविता में, 'पूजा' (चूहा-बिल्ली), 'रामनाम की गोलियाँ' आदि कविताओं में रूढ़िग्रस्त समाज पर तीखे व्यंग्य किये हैं, 'मैकाले के खिलौने' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'मेड इन जापान' खिलौनों से
सस्ते हैं लार्ड मैकाले के
ये नये खिलौने इनको लो
पैसे के सौ-सौ दो-दो सौ।
अंग्रेज़ी खूब बोलते ये
सिगरेट भी अच्छा पीते ये
बच्चे भी पैदा कर सकते
हो सकते हैं दो से दो सौ।

यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रयोगधर्मा कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल छायावाद और छायावादोत्तर कविता संगम पर स्थित कवि हैं। जिनमें छायावादी काव्य-माधुरी का दर्शन है और छायावादोत्तर कविता की शब्द-शिल्प-शैली की अपेक्षा छायावादोत्तर काव्यधारा की सहजता, सरलता और नवीनता के साथ-साथ नवजीवन की नवीन अभिव्यंजना शक्ति भी उपलब्ध है। चन्द्रकुँवर के काव्य का यही सबसे बड़ा गुण उभरकर सामने आता है। कवि के उजले-उजले गीत और टटकी-टटकी कविताएँ आधुनिक हिन्दी कविता की विशिष्ट उपलब्धि है।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य में प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता और नवगीत के उदित संदर्भ ही नहीं उद्भाषित होते बल्कि उसकी विकासमान स्थिति और स्थितिबोध के महत्त्व और मूल्यांकन में एक प्रकार के शिल्प-संवेदन की ताज़गी का उत्कृष्ट सृजन स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कवि के काव्य में क्लिष्ट और बोझिल भाषा नहीं जड़ी गई है, बल्कि उसमें नदी के प्रवाह की भाँति सहज और सरल जनरुचि की प्रवाहात्मक भाषा का तारल्य है। अनुभूति और अभिव्यंजना के उजले और टटकेपन के साथ-साथ भाषा में भी उजलापन और टटकापन स्पष्ट झलकता है। गीतों की भाषा में शब्दावली की स्निग्धता, प्रकृतिसंबंधी कविताओं की भाषा में मनोहारी प्रतीकों एवं बिंबों की क्रांतिमयता स्पष्ट झलकती है। सरल शब्दचयन और भावानुकूल कविता-वाक्यांशों का प्रयोग चन्द्रकुँवर की काव्यभाषा की विशेषताओं में से एक है। हिन्दी कविता

की भाषा में उपयुक्त एवं सार्थक भावबोध और शब्दगत एवं वाक्यगत सहजता की संस्थापना के रूप में चन्द्रकुँवर का योगदान एक महत्त्वपूर्ण और नई दिशा प्रदान करने वाला योगदान है। स्वच्छंद-नवछंद और नवलय की सफल प्रयोगधर्मिता चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य की शैलीगत विशेषता है तो कोमल काव्यात्मक ध्वनि संयोजन और प्रभावकारी शब्द-संयोजन कवि की विशिष्टता है।

3

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य की प्रासंगिकता

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की काव्य-साधना के संदर्भ में निवेदन है कि हिन्दी कविता में जब विषय की नवीनता, भाषा, सौन्दर्य का बोध और अभिव्यक्ति की सार्थक-गंभीरता की आवश्यकता हिन्दी के आलोचक और पाठक महसूस करने लगे थे तब चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अपने काव्य में उपर्युक्त तीनों दृष्टिबोधक तत्त्वों को समेटकर हिन्दी कविता के क्षेत्र में आगे बढ़ रहे थे। मेरे इस कथन का प्रमाण उनकी प्रायः सभी कविताएँ हैं। शब्द प्रयोग की नवीनता और सबलता, अभिव्यक्ति की तरलता और भाव-प्रवणता बर्त्वाल की क़विताओं की विशेषताएँ हैं। कविताओं में शब्द-सौन्दर्य संपदा परिलक्षित होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कवि काव्यात्मक सौन्दर्य-बोध की सृष्टि करने में काव्य-लेखन के अपने उस धर्म के प्रति जागरूक थे जिसकी आवश्यकता आलोचक और जागरूक पाठक महसूस कर रहे थे। लेकिन हिन्दी आलोचना के विकासक्रम पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि अधिकतर आलोचक काव्य-चिंतन को गतिशील बनाने की दिशा से भटक गए थे और वे सैद्धान्तिक समीक्षा की परिधि में ही चक्कर लगाते रहते थे। वे काव्य की नई भाव-भूमि और सामाजिक मूल्यों के अनुसंधान की ओर नहीं बढ़ पाये थे। परिणामतः उनकी दृष्टि ने रचनाकारों की रचनाओं में उद्घाटित नई दिशा, नई भाव भूमि और सामाजिक मूल्यों की नव चेतना को अपने चिंतन से दूर रखा। या यों कहें कि नव चेतना के चिंतन और उसकी चर्चा करने में वे सक्षम नहीं हो पाए थे। बर्त्वाल के सशक्त रचना-विधान की तत्कालीन आलोचकों ने इसीलिए परवाह भी नहीं की। न उनके काव्य पर कोई वांछित और स्तरीय समीक्षा ग्रंथ ही लिखा। कविवर निराला के रचना-विधान पर भी वाँछित और स्तरीय समीक्षा ग्रंथ की कमी वर्षों तक खटकती रही। निराला और बर्त्वाल के काव्य की भाषा एवं प्रयोग विधि हिन्दी काव्य भाषा के क्षेत्र में नवीन और महत्त्वपूर्ण होते हुए भी तत्कालीन आलोचकों के लिए अनपेक्षित ही बनी रही। बर्त्वाल की काव्य भाषा की विशेषताएँ हिन्दी कविता में श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में तो विद्यमान हैं ही, हिन्दी काव्य भाषा

के क्रमिक विकास की सरणियाँ भी इससे स्पष्ट होती हैं। चन्द्रकुँवर ने अपने काव्य में नई भंगिमाएँ और नई अर्थभूमि विकसित की है जो नये हिन्दी काव्य-संसार की मूल विशेषता है। अपने सीमित संसार में ही कविता कला की सृष्टि या सृजन बर्त्वाल ने जिस खूबी के साथ किया है वह प्रतिभा के धनी विरले कवि के बूते की बात थी। नई दिशा, नई भावभूमि और सामाजिक मूल्यों की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट करना अभीष्ट है कि कवि बर्त्वाल के युग में देशी-विदेशी ताक़तों के शिकंजे में था देश। जनता और महात्मा गाँधी जैसे देश के नेता उस ताक़त को उखाड़ फेंकने की दिशा में कार्य कर रहे थे। विदेशी ताक़तों के रवैये के प्रति देश का उदार बुद्धिजीवी वर्ग और लेखक वर्ग काफ़ी क्षुब्ध हो गया था। सामाजिक उथल-पुथल का युग था वह। धर्म, भाषा, ताक़त, देशप्रेम और व्यक्ति के निजी अस्तित्व के लिए चुनौतियों के वर्ष थे वे। नया समाज, धर्म, भाषा और ताक़त से आगे बढ़कर मानव कर्म, देश-प्रेम और सामाजिक अस्तित्व की रक्षा के लिए अनवरत संघर्षरत था। भारतीय समाज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय गौरव अर्जित करने की दिशा में प्रयत्नशील था। महात्मा गाँधी अपने अहिंसा के शस्त्र के बल पर अंग्रेज़ों से देश आज़ाद कराना चाहते थे। देश की जनता की जाति-पाँति, वर्ण-मान्यता और साप्रंदायिकता के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करने के लिए आह्वान किया जा रहा था। गाँधी जी ने इस युग में स्वयं सादगी से जीवन यापन करके सादगी से रहने के प्रति जनता को सचेत किया। अहिंसा का उपदेश देते हुए वे जन-जन को राष्ट्रीयता की ओर बढ़ने के लिए अनुप्रेरित करते रहे। इस संदर्भ में 'महात्मा गाँधी की बकरी' कविता के कुछ अंश पठनीय हैं। अमीर-ग़रीब, ज़मींदार-मज़दूर की व्यवस्था के प्रति आन्दोलन ज़ोरों से सामने आए। यही सब कुछ था जो देश के विचारकों, नेताओं और कवि-लेखकों के लिए प्रासंगिक भी था और अत्यंत संगत भी। बस, ये ही वे नई दिशाएँ, नई भाव-भूमि और सामाजिक मूल्य थे जिनकी ओर चन्द्रकुँवर बर्त्वाल उन्मुख रहे। जिनका वे चिंतन करते थे और लेखनी द्वारा अपनी काव्यात्मकता के बल पर समाज को अनुप्रेरित करते रहते थे।

दूसरी तरफ़ कविता लेखन की दिशा में मात्र छायावादी तत्त्वों की भरमार होने लगी थी। बाला, फूल, पंखुड़ी, झलमल, टलमल, केश-विन्यास, रूपराशि, प्याला, हाला, मधुबाला आदि में ही कवि और पाठक झूमने लगे थे। इन छायावादी तत्त्वों से आगे बढ़कर हिन्दी के जिन कवियों ने नई भावभूमि की तलाश की और इस ओर बुद्धिजीवियों और काव्य-पाठकों को उन्मुख किया, उनमें सर्वप्रथम कविवर निराला का स्मरण किया जाता है। अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन,

त्रिलोचन एवं बर्त्वाल ने निराला की ही भाँति कविता की नई भाव-भूमि को अपने काव्य का आधार बना लिया था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कविवर निराला में बर्त्वाल के काव्य की गुण-संपदा के प्रति काफ़ी आस्था बन गई थी। बर्त्वाल उस युग के कवियों में निराला के काव्य को काफ़ी मान-सम्मान देते रहे। इस संदर्भ के प्रमाण स्वरूप निराला बर्त्वाल के परस्पर पत्र व्यवहार के संपर्क सूत्र साक्षी हैं। कविवर निराला और बर्त्वाल की तुलना करना यहाँ ध्येय नहीं है बल्कि संदर्भानुकूल स्थापना की समतुल्यता का संकेत देना ही उद्देश्य है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताओं के अध्ययन रो प्रबुद्ध समीक्षक और पाठक प्रस्तुत उद्भावना को गति देंगे। सामाजिक परिवेश को निराला ने जितने निकट से देखा परखा और वाणी दी, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल भी इसी दिशा के प्रति आस्थावान रहे।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही बर्त्वाल विकलांग हो गए थे। उनका सब कुछ टूट चुका था। मात्र दृष्टि और लेखनी ही बची रह गई थी। उस स्थिति में भी कवि ने अपना वह कर्म नहीं छोड़ा जिसकी देश और हिन्दी कविता को आवश्यकता थी। इस कर्मपरायणता का पूरे सात वर्षों तक बड़ी हिम्मत, निष्ठा और तन्मयता के साथ कवि ने बखूबी निर्वाह किया। अफ़सोस की बात यह है कि इस तरह के विराट व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी कवि की प्रतिभा से हिन्दी आलोचना संसार अनभिज्ञ रहा। इक्कीस से अट्ठाईस वर्ष की अवस्था तक यह कवि क्षयरोग की विभीषिका से निरंतर जूझता रहा। शारीरिक रुग्णता की कारा में बंद होते हुए भी कवि देश, समाज और स्वभाषा हिन्दी के उन्नयन के प्रति सचेत और सृजनशील रहा। आख़िर यह मेधा, यह शक्ति उस शरीर को त्याग कर कहीं चली गई। उसे जाना ही था। कवि की मृत्यु संबंधी कतिपय कविताओं की रचना इसी परिप्रेक्ष की सबूत हैं—

बैठ मृत्यु के द्वारों पर भीषण निश्चय से
मैं गाता हूँ यम का यश वैवस्वत यम का।
आ गई है मृत्यु इसको लूँ हँसकर रो-रो कर
यह कौन मित्र या बैरिन जो आती उर के भीतर।

बर्त्वाल की 'यम' (महा अथिति) कविता की भावभूमि और अभिव्यंजना हिन्दी संसार के लिए एक महान उपलब्धि की रचना मानी जाती है।

भारतीय चिकित्सा जगत में उस युग में क्षयरोग की चिकित्सा और उसके समुचित उपचार के साधन ही सुलभ नहीं थे। बड़े अस्पतालों में रहे भी होंगे तो अत्यंत ख़र्चीले। तब कवि को इस भयंकर रोग से पल-पल जूझना पड़ा और वह भी पूरे सात वर्षों तक। इस प्रकार के सामाजिक उत्पीड़न में कवि ने जो आत्म-पीड़ा

संवन्धी कविताएँ रची हैं, निश्चय ही वे सब एक विकासशील देश के सामाजिक परिवेश के इतिहास की कविताएँ हैं। भारतीय समाज के इस परिवेश के इतिहास की कविताओं में वेदना का सागर विद्यमान है। हिमालय की केदारनाथ घाटी में बनाए गए पँवालिया के उस मकान के साथ बनी गौशाला की पहली मंज़िल के छोटे कमरे में अकेले रहते हुए वे क्षण, जब न कवि के ओढ़ने-बिछाने और पहनने के कपड़े छुए जाते थे, न कवि के पास बैठकर उससे बातचीत की जाती थी। दूर से ही औपचारिक पूछताछ ज़रूर की जाती रही होगी। न कवि के अल्प-भोजन का पात्र वह तसला और लोटा जीर्णशीर्ण अवस्था में उसी गौशाला के आँगन में 21 जून 1980 तक पूरे तैंतीस वर्षों से पत्थरों के बीच पड़े हुए थे। विडंबना यह रही कि उस जानलेवा संक्रामक रोग से परिवार-जन भी भयाक्रांत रहते थे। विश्व-साहित्य में आत्मपीड़ा जनित काव्यलेखन के परिवेश का इससे ज़्यादा दर्दनाक उदाहरण शायद ही हो। इस प्रकार की मनःस्थिति की मार्मिक काव्य रचनाएँ *चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ* 'भाग : एक-दो' में उपलब्ध हैं। पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो अनुभव करेंगे ही।

रुग्णावस्था में भी कवि ने अपनी सबल और सशक्त मनःस्थिति के साथ हिमालय के जनजीवन के संगी-साथी पर्वत, शिखर, घाटी, वृक्ष, बर्फ़, लताएँ, नद-नदी, जलधारा, पत्थर, काँटे, पगडंडी, सघन वन, मेघ, इन्द्रधनुष, कफ्फू, काफलपाक्कू, मधुरित, हेमंत, शरद, शिशिर, ग्वाला, वनदेवी, वनदेवता, स्वीलीघाम, रात्रि का सन्नाटा, चींटी, कुत्ता और जीतू आदि सभी कुछ समेटते हुए, उनसे तरलता और ताज़गी की औषधि पान कराते हुए हिन्दी कविता-यात्रा के इतिहास में अद्भुत गरिमा स्थापित की है। इसीलिए कवि की अधिकांश कविताएँ हिमालय-परिवेश की कविताएँ हैं।

स्थान-नामों पर रची गई कविताएँ संबन्धित स्थानों और नामों की उभरती या मिटती अर्थ-छवियाँ प्रस्तुत करती हैं—नागनाथ, पँवालिया, लखनऊ, अलकनंदा, भागीरथी, भावर का रास्ता, मेरा घर, देहरादून, ऋषिपर्णा (देहरादून की रिस्पना नदी) बाहर-भीतर, ब्रिटेन के प्रति, घनानंद के प्रति, कफ्फू, काफलपाक्कू आदि अनेक कविताओं की भावभूमि में मानवसमाज के वे तत्त्व विद्यमान हैं जिनके प्रति सामाजिक वैषम्य, नैराश्य, आक्रोश या अभिन्नता की भूमिकाएँ परिलक्षित होती हैं। कई गीतों और कविताओं में कवि का आत्मदर्शन सार्वजनीन दर्शन बनकर टूटे बिखरे समाज को समेटने और सँवारने की दिशा में कल्याणकारी और आदर्शोन्मुखी स्वरूप में रूपायित हुआ है। आस्थाहीन व्यक्ति किन कोणों पर ठहर कर आस्थावान बना और

उसे कितना आत्मिक आनंद सुलभ हुआ, कवि के कई गीतों में यही कुछ अभिव्यक्त और अभिव्यंजित हुआ है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने उन तत्त्वों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया है जिन तत्त्वों ने कवि के मार्ग को अवरुद्ध किया, उसकी उपेक्षा करके हमेशा के लिए उसे वाँछित भावना से वंचित करके निरीह बना डाला। समाज की ऐसी विडंबना चिंतन और मनन से परे नहीं मानी जा सकती, उसे नकारा नहीं जा सकता। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य की प्रासंगिकता के संदर्भ में कवि की देशप्रेम, सामाजिक विषमता के प्रति व्यंग्य, हिमालय और प्रकृति की कविता गंगा, उत्पीड़न और अनंतानंद, दर्शन संबंधी रचनाएँ प्रासंगिक और संगत हैं। कविताएँ पढ़कर कोई संशय नहीं रह जाता। निश्चय ही कवि की कविताएँ, कवि के गीत युगानुकूल भावभूमि की रचनाएँ हैं। हिमालय और प्रकृति मानवजीवन में युगों तक प्रेरणा देते रहेंगे या यों कहें कि मानव-समाज में हिमालय और प्रकृति का महत्त्व और मूल्य युगयुगों तक बना रहेगा। इस दृष्टि से बर्त्वाल की हिमालय और प्रकृति संबन्धी रचनाओं का महत्त्व उतना ही प्राणवान है जितना हिमालय और जनजीवन का। भारत गाँवों का देश है। जिसमें शहरी लोगों की अपेक्षा ग्रामीण जनता शोषण, प्रताड़ना, विषमता, साधनहीनता से पीड़ित है। ग़रीबी मिटने नहीं पाई है। बल्कि हर वर्ष जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण ये उपर्युक्त असंगतियाँ बढ़ रही हैं। आज़ादी से पूर्व लिखी गई कवि बर्त्वाल (1919-47) की सामाजिक विषमता और विद्रूपतापरक कविताएँ इतिहास के लिए तब तक सार्थक मानी जाती रहेंगी जब तक देश स्वस्थ और सम्पन्न नहीं हो जाता। वैसे भी विषमता और विद्रूपता का इतिहास समेटे हुए कवि की इस संदर्भ की कविताएँ समाज की स्थायी निधि के रूप में जीवित रहेंगी–

राजमहल को देख हिला सिर कहते– बेटा
एक रोज़ गिरकर तू तो हमसे भी होगा बदतर।

प्रस्तुत पत्थर कविता का उपर्युकत अंश शानशौकत के दंभ की इति पर उपेक्षितों और दलितों की आवाज़ बुलंद करता है। नगण्य और अर्थहीन समझा जाने वाला पत्थर अपने महत्त्व का एहसास जताता है और महल पर करारा तमाचा जड़ देता है। सूक्ष्मचेता कवि की सूक्ष्म-दृष्टि का यह अद्‌भुत उदाहरण है। इसी प्रकार 'दंशन' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

पग पग पर दंशन
पर न मिटेगा यह जीवन।

सामाजिक या वैयक्तिक दंशन के किसी दुष्प्रभाव से कवि दुखी न होकर जीवन

की अक्षुणता के प्रति आस्थावान है। व्यक्तिगत जीवन ही नहीं वह समष्टिगत जीवन भी हो सकता है जिसके स्थायी तत्त्वों के प्रति कवि आश्वस्त है। ऐसी मनःस्थिति में लिखी गयी कविताओं की आधार-भूमि बर्त्वाल के जीवन परिचय के कतिपय क्षण हैं, जब कवि ने स्वयं को प्रताड़नाओं में झोंका हुआ पाया। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि केदारनाथ मार्ग पर स्थित अगस्त्य मुनि में हाई स्कूल की स्थापना बर्त्वाल ने ही की थी। इलाक़े के लोगों को शिक्षा के प्रति जागरूक किया गया। स्कूल की स्थापना हुई और बर्त्वाल उसी स्कूल में प्रधानाध्यापक बने। कुछ असामाजिक स्वार्थी तत्त्वों ने स्कूल की प्रबन्ध समिति में रहकर उन्हें अनावश्यक रूप से तंग करना आरम्भ किया। अध्यापकों के वेतन और स्कूल की व्यवस्था में सचिव ने गड़बड़ी करनी शुरू की तब बर्त्वाल ने इस असामाजिकता का विरोध किया तो उन्हें अनेकानेक रूप से प्रताड़ित किया जाने लगा। संभवतः उपर्युक्त उद्धृत कवितांश इसी आधार पर भूमि की कविता है, जिसकी भावभूमि सार्वजनिक है।

अपनी काव्य रचना के महत्त्व को चन्द्रकुँवर बर्त्वाल भली-भाँति समझते थे। उन्हें अपनी काव्य-साधना के प्रति पूरी आस्था थी। विविध रंगी भावभूमि पर रचित उनकी अन्तश्चेतना सम्बन्धी कविताएँ तब उनके लिए धन से भी बढ़ कर थीं। इसी लिए कवि रुग्णावस्था में भी अपने काव्यधन की सुरक्षा के प्रति जागरूक रहता था। उन की 'प्रहरी' कविता इसी जागरूकता का दृष्टांत है–

मेरे संचित जीवन का धन
चुरा न कोई ले जाए।
मेरी शान्ति अचानक छूकर
ज़हर न कोई कर पाए।
जागरूक रहता इस भय से
निशिदिन मेरा प्रहरी
मेरे मधुर स्वर्ग में कोई
नरक न जिससे लाये।

बर्त्वाल के तथाकथित सहपाठियों और मित्रों का कवि के प्रति क्या रवैया रहा, इस सम्बन्ध में उनके परिवारजनों का कहना है कि कवि के कृतित्व के प्रति विमुखता और उनके व्यक्ति के प्रति कड़ुवाहट का व्यवहार सर्वप्रथम कवि के कतिपय मित्रों ने ही आरम्भ किया। इससे बड़ी विडम्बना किसी व्यक्ति के जीवन में और क्या हो सकती है।

उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

देख अपने सुहृद को मैंने कहा— मित्र,
कुछ भी आस जीवन की नहीं,
किन्तु दुश्मन की खुशी को देखकर
आस भी मुझको अचानक मिल गई।

कवि का आकाश निर्मल था। स्वच्छ था। कवि कर्म सार्थकता के वे बीज लिए हुए था जिनमें ऊर्जा विद्यमान थी। कवि की काव्यात्मक उपलब्धि व्यक्तिगत ही नहीं अपितु समाजगत धनस्वरूप थी इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की अग्नि में वे दोस्त स्वयं ही दहकते रहे होंगे। पर ऐसा क्यों ?

नास्तिकता से आस्तिकता की ओर बढ़ना और 'जय शिवशंकर' 'हे भगवान' 'हे प्रभो' आदि ब्रह्मसत्ता के सम्मुख आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति करके दुःखों से छुटकारा या मुक्ति की याचना करना भी कवि की कुछ कविताओं की भावभूमि रही है। मन और स्वास्थ्य से निर्बल व्यक्ति एक मात्र उसी परम ब्रह्म के सहारे की कामना करता है। कवि बर्त्वाल भी इससे अछूते नहीं रहे। इस संदर्भ में निम्नांकित कविताएँ द्रष्टव्य हैं—

खुली आँख जब ईश्वर के चरणों में आया
रूप और आनंद-ज्ञान तब तुमसे पाया।
देखी लौकिक रूपों की व्यर्थता हृदय में
देखा उसमें जो रहती स्थिर वस्तु प्रलय में।

तथा

प्रभो सीख लेता जो भक्ति तुम्हारी
उसे सदा आशा देती है शक्ति तुम्हारी।
रहता है वह सदा तुम्हारे जग में सुख से
वह न कभी पड़ता विपरीत भाग्य से दुःख से !

आस्तिक बनने पर ही तो रूप और आनंद-ज्ञान कवि को प्राप्त हुआ। ईश्वर की भक्ति से ही उसे शक्ति भी मिली। उसे यह पूर्ण ज्ञान हो गया कि एक मात्र ईश्वर ही उसके दारुण दुखों को दूर कर सकता है। और जीवन में पुनः शक्ति और साहस भर सकता है। तब वह याचना करने लगता है--

हे प्रभो मेरे हृदय से यह व्यथा दारुण हरो
हे प्रभो मेरे मृतक तन को पुनः जीवित करो।
उठाओ मुझको पुनः संसार के रणक्षेत्र में
इस निराशा भरे उर को शक्ति साहस से भरो !

उपर्युक्त कविताओं के आधार पर कोई भी नास्तिक कवि की मेधा और आत्मशक्ति पर प्रश्न चिह्न लगा सकता है। लेकिन तथ्य यह है कि मन और स्वास्थ्य से निर्वल व्यक्ति की नियति इस समाज में बस, ईश्वर की ही शरण रही है और रहेगी। कवि के युग में विज्ञान भी इतनी प्रगति नहीं कर पाया था। आज के युग में जहाँ पर विज्ञान की भूमिका असफल हो जाती है वहीं से व्यक्ति ईश्वर की शरण में जाता है। और सच कहा जाए तो वैज्ञानिकों को भी ईश्वर का भक्त पहले पाया गया है, वैज्ञानिक बाद में। ईश्वर भक्ति के साथ-साथ कवि भारत माता को परतंत्रता से मुक्ति दिलाने की दिशा में देश में कड़े स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में अपने जीवन की बलि देने के लिए उद्यत है। एक कविता उद्धृत की जा रही है–

बलि दूँगा जननी मैं, जीवन की बलि दूँगा
तुम्हें मुक्त करने को माँ सौ बार मरूँगा !
थाम चक्र पीड़न का मैं अपनी छाती पर
उसे क्षीण कर दूँगा, उससे मैं न डरूँगा !
व्यर्थ बहेगा नहीं रक्त मेरा पृथ्वी पर
रक्त उषा से मैं रवि को उत्पन्न करूँगा !

देश प्रेम सम्बन्धी कविताओं में कविता की उपर्युक्त पंक्तियाँ शारीरिक स्वास्थ्य से निर्वल, अत्यंत निर्बल लेकिन मन से सबल और सशक्त कवि की कविता शृंखला की यह कड़ी भारतीय कविता साहित्य में एक वीरवाणी के रूप में जन-जन में और दिशा-दिशा में सदैव गूँजती रहेगी।

तात्पर्य यह है कि कवि बर्त्वाल की सृजनपरक मानसिकता, बिल्कुल सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग रही है। उनसे जुड़ी रही है। कवि ने उन्हीं सामाजिक मूल्यों की भावभूमि पर कविताएँ रची हैं।

4

प्रगति, प्रकृति और जनजीवन के कवि

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने सहज, सरल और गहरी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति तीन गीतिकाव्यों के रूप में भी की है। सर्वप्रथम गीति काव्य को कवि ने 'यौवन के आँसू' की संज्ञा दी थी। संपूर्ण गीतिकाव्य चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ, प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, गीतदूत और मोहभंग शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाशित हैं। दरअसल उक्त गीतिकाव्य यौवन के आँसू नहीं प्रतीत होता—यह तो पारदर्शी प्रेम में उल्लास, उत्कंठा, अभिलाषा और आनंद की गंगाधारा प्रतीत होती है। फिर अनायास कवि के जीवन में एक मोड़ आता प्रतीत होता है जिससे वह निराश, हताश, हतप्रभ, करुणार्द्र, वियोगी, विवेकशील, दार्शनिक और गाँधीवादी रूप धारण कर लेता है। यह विचारणीय है कि श्री शंभुप्रसाद द्वारा प्रकाशित *नंदिनी* नाम क्यों प्रचारित किया जाता रहा है ? नंदिनी नाम की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगता है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताओं में गीतिकाव्य को स्वतंत्र रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। कवि का दूसरा गीतिकाव्य *माधवी* शीर्षक से कवि की ही हस्तलिपि में लिखा उपलब्ध हुआ है। इस गीतिकाव्य में कुल 121 छंद हैं। एक छंद चार पंक्तियों में लिखा गया है। माधवी के गीतों को पूर्वा, उत्तरा, मानस-मन्थन और शान्तिदूत—चार रूपों में प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति एवं पर्यावरण के विभिन्न तत्त्वों को आधार बनाकर जड़, चेतन, और जीव की व्याख्यात्मक काव्य प्रस्तुति ही माधवी की भावभूमि है।

कवि का तीसरा गीतिकाव्य *प्रणयिनी* नाम से प्रकाशित है। यह तो नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि उक्त काव्य मुख्यतः प्रणय के रूप में गुण, रस और कलापक्ष पर आधारित है। इसमें भी एक छंद चार पंक्तियों में रचा गया है। कुल एक सौ दस छंदों में *प्रणयिनी* में रूप-श्रृंगार को वाणी दी गई है।

प्रथम गीतिकाव्य *यौवन के आँसू* का आरंभ कवि की प्रेम की अमर पुरी में रहने की अभिलाषा से होता है—

मुझे प्रेम की अमर पुरी में अब रहने दो
अपना सब कुछ देकर कुछ आँसू लेने दो।
प्रेमपुरी जहाँ रुदन में अमृत झरता।
जहाँ सुधा का स्रोत उपेक्षित सिसकी भरता।
जहाँ देवता रहते लालायित मरने को।

अपना सर्वस्व, सारी शक्ति, सम्पूर्ण मेधा समर्पित करके कवि ऐसे प्रेम-प्रदेश में रहने की इच्छा प्रकट करता है जहाँ पहुँच कर देवता भी मरने के लिए लालायित रहते हैं। जहाँ रोते हुए भी नयनों से अमृत की बूँदें ही झरती रहती हैं। जहाँ अमृत का स्रोत अनदेखा पड़ा है और वह सिसकियाँ भरता प्रतीत हो रहा है। ऐसे प्रेम-प्रदेश में रह कर कवि अपनी आँखों से मात्र कुछ अश्रुबूँदें टपका लेने के लिये विकल है। अश्रुबूँदें टपका लेने पर वह स्वच्छंदतापूर्वक जीवन और जगत के विषय में दार्शनिक सोच-विचार कर सकेगा, कव वह जीवन के गूढ़ रहस्यों का निष्कर्ष निकाल कर अपने मन का विपाद हल्का कर सकेगा ! निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

मधुर स्वरों में मुझे नाम प्रिय का जपने दो
x x x
मुझे डूबने दो यमुना में प्रिय नयनों की।
x x x
मुझे रूप के कुंजों में जी भर फिरने दो।

कवि एक सामान्य व्यक्ति के रूप में 'प्रिय' अर्थात् असीम शक्ति का जाप करना चाहता है। वह अपने उस प्रिय की आँखों की यमुनाधारा में डूबना चाहता है। वह उस प्रिय के विविध रूप-कुंजों में जी भर कर विचरण करना चाहता है। कवि आगे कहता है—

जन्म जन्म से खोज रहा है उसको जीवन
जिसे देख कर काँप उठे नयनों में रोदन।
जिसे देख कर खिले बसंत हृदय में मेरे
जिसके दीप जले इस शून्य निलय में मेरे
जिसे लुभाने को आया है मुझमें यौवन।
x x x
मेरे उर से उमड़ रही गीतों की धारा
बन कर गान बिखरता है यह जीवन सारा।
किन्तु कहाँ वह प्रिय मुख जिसके आगे जाकर
मैं रोऊँ अपना दुःख, चातक-सा मँडराकर।
x x x

नदी चली जायेगी, यह न कभी ठहरेगी
उड़ जायेगी शोभा, रोके यह न रुकेगी।
भर जायेंगे फूल, हरे पल्लव जीवन के
पड़ जायेंगे पीत एक दिन शीत मरण से।

कवि कहता है कि वह कई जन्मों से अपने उस प्रिय को खोजता खोजता विचरण कर रहा है, जिसको देख कर हृदय में बसंत खिल उठते हैं, शून्य हृदय—निलय में दीप जल उठते हैं। पर वह 'प्रिय' है कहाँ जिसके सम्मुख वह चातक-सा 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' बोलता हुआ अपनी पीड़ा प्रकट कर सके—

मेरे पास आज इतना धन है देने को
नये फूल हैं पाँवों के नीचे बिछने को।
नये मेघ हैं, नयी चाँदनी, है नव-यौवन
निर्मल मन है, और स्नेह से छल-छल लोचन।

कवि के पास समर्पित करने के लिये प्रचुर धन है, नये पुष्प, नये मेघ, नयी चाँदनी, निर्मल-मन, नव-यौवन और स्नेहसिक्त बरसते लोचन हैं। इस भरे यौवन में 'प्रिय' से मिलने की कवि की आशा निरन्तर बलवती होती जाती है।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. में तथा लखनऊ विश्वविद्यालय में एक वर्ष एम.ए. में अध्ययनरत रहे थे। क्षयरोगग्रस्त होने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। उस काल में क्षय रोग का उपचार भारत में तो नहीं ही होता था। विदेशों में सर्वत्र नहीं होता था। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल युवावस्था में ही अपने शारीरिक जीवन की इति होना जान चुके थे। इसलिये वे अपनी बुद्धि, प्रतिभा और समझ का सदुपयोग समय पर कर लेना चाहते थे। वे जीते जी एक मात्र हिन्दी की सेवा करने का निश्चय कर चुके थे। वे निरंतर उत्कृष्ट काव्य लेखन करते रहते थे। जिसमें भारतीय जीवन, हिमालय की शोभाश्री और परिवेशगत रूप, रस और गंध की महक होती थी। जिसे आज भी प्रासंगिक माना जाता है और सदैव माना जाता रहेगा। क्योंकि काव्य या साहित्य में चित्रित समाज का सांस्कृतिक इतिहास होता है। वे साहित्य-संसार को अपना धन-वैभव अर्पित करने के लिये प्रतिबद्ध थे। उनकी रचनाओं में उफनती, किन्तु नियंत्रित बहती नदी की जलधाराओं का-सा शीतल समीरण प्रतिबिंबित होता है। उनकी रचनाओं में जीवन की करुणा और संवेदना के स्रोत फूटते प्रतीत होते हैं। उनकी रचनाओं में विहंगम जीवन-दृष्टि और अर्थ की गहराई विद्यमान रहती है।

निम्नलिखित छंद पठनीय है—

डूबे प्राण उन्हीं मृदु ध्वनियों के गुंजन में,
डूबे अधर उन्हीं मृदु अधरों के चिंतन में।
वाणी ने उससे मिलने की रटन लगाई
नयनों की वह प्रीति सभी अंगों को भाई।
प्रिय लगते हैं काँटे भी अपनी मधुरितु के
प्रिय लगते है दीन वचन भी अपने वैभव के।
प्रिय लगते हैं अपनी वर्षा के तर्जन-गर्जन
प्रिय लगते हैं फूलों के आतप से पीड़ित तन।

कवि जीवन के अवलंबों की ख़ूब पहचान रखता है। वह जीवन को कल्याणप्रद मार्ग पर चलाने के लिये माध्यमों को तलाशता है—

प्रेम नहीं वह, प्रेम नहीं वह, मेरे दुःख का—
वह तो था उपचार, भाव था वह तो मुख का
करुणा थी वह, मेरे सिरहाने आकर के
बहलाया जिसने मुझको दो दिन गाकर के।
x x x
बाँहों पर बाँहें धर, मेरे उर से लग कर
हँसती रहीं चाँदनी-सी निर्मल तुम दिनभर।
छूट गया जैसे मैं जन्म-जन्म के दुःख से
मिला स्नेह मुझको जब मधुर तुम्हारे मुख से।
दुःखी हृदय की मधुर कल्पना यों ही मन को
भटकाती रहती सुख के वन में निर्मम हो।

कवि की 'प्रेम' और, 'प्रिय' की मधुर कल्पना दुःखी जीवन को बहलाने के लिये उपचार की भूमिका का निर्वाह करती रही या यों कहें कि करुणा के असीम सागर में डूबते हुए जिसने 'प्रेम' संगीत सुना कर कवि को दो चार दिन तो बहलाया ही।

बाँहों में बाँहें धरने की प्रक्रिया, हृदय-स्पर्श कर लेने का सुख, निर्मल चाँदनी की तरह दिनभर हँसते रहना कवि को प्रिय लगता रहा। जैसे वह जन्म-जन्म के दुःख से मुक्त हो गया हो।

पर वास्तविकता तो यह है कि कवि के दुःखी हृदय की मधुर कल्पना उसे सुख के नंदनवन में यों ही भटकाती रहती थी।

कवि का यह कहना—

दुःख ने ही मुझको प्रकाश का देश दिखाया
सुख ने मुझको हल्का-सा ही राग सुनाया।

इस बात का प्रमाण है कि उसके विचारों में, उसके चिंतन में और उसके लेखन में 'दुःख' एक प्रकाश-पुंज की तरह सिद्ध हुआ।

यहाँ अमृत है आशा, विष है विषम निराशा
देती महा सफलता साहस की भाषा।

इसी साहस और प्रेम के बल पर कवि मृत्युशय्या पर लेटे-लेटे जीवित रह सका। शरीर से क्षीणतर होता हुआ कवि अपने गीतों को संबोधित करता है—

प्यारे गीत, बहुत दिन रहे साथ हम जग में
रोते गाते हुए बढ़े, हम जीवन-मग में
आज समाप्ति हुई पथ की अब मुझे विदा दो
लौटो तुम, जाने दो दूर मुझे जीवन से।
x x x
तुम गाओ जग को रहने योग्य बनाओ।
x x x
तुम नास्तिक को दृढ़ आस्तिक, दृढ़ भक्त बनाना।
x x x
करुणा वह फैलाना उर को स्वच्छ करे जो
प्रणयगीत वह गाना उर के कलुष हरे जो।
x x x
सबको एक समझना, तुम सबको अपनाना।
x x x
शांति शांति सबके जीवन में शांति व्याप्त हो
शांति शांति सबके जीवन में शांति प्राप्त हो।

इस प्रकार एक सौ तेईस गीत छंदों में कवि ने प्रेम, प्रिय और प्रेमी के माध्यम से आशा और करुणा की जो नदी प्रवाहित की है वह इस संसार में बहती ही जाएगी। इस बहती नदी का जल और इसकी गतिमान शीतलता प्रवाहित होती ही रहेगी। कहीं उज्ज्वल हँसी बनकर, कहीं हिम चाँदनी-सी हँसकर, कहीं नव-यौवना-सी इठलाकर, कहीं तृषितों की तीस बुझाकर और कहीं महकती धान की फसलें उगाकर।

माधवी के एक सौ इक्कीस गीतों में कवि प्रकृति की सुन्दरता को वाणी देने की प्रक्रिया में सचेत रहा—

(18)

बाहु चाहती तुम्हें बनाना
सलज बंदिनी अपनी

प्राण चाहते तुम्हें पूजना
आदि रहस्यमयि रमणी।

(19)

बहने लगी पवन हिमगिरि के
शिखरों से आनंद भरी
स्पर्श योग्य हुई सुरधुनि की
लहरें हिम से ठिठुरीं।

प्रकृति सौन्दर्य को रहस्यमयी नारी के रूप में देखकर कवि उसकी रूपाभा को चित्रित करता है। वह रूपाभा किन-किन रूपों में अनुपम सौन्दर्य बिखेरती हुई दिखलाई दे सकती है—

(42)

तरुणाई के, मधुमयि सरि के
तटपर एक शिला पर
बैठी होंगी तुम मृदु हँसती

(43)

खुला हुआ होगा अलिवर्णी
वेणी का कोमल बंधन
हिला रहा होगा अधरों को
लहरों से उठ शीत पवन।

(44)

काँप रहे होंगे गीतों से
अधर रस भरे सुंदर
छलक रहा होगा नयनों में
स्वर्ग पिघल जल बनकर।

बैठी होंगी तुम मृदु हँसती, जल में चरण डुबोकर,
या हिला रहा होगा अलकों को, लहरों से उठ शीत पवन,
छलक रहा होगा नयनों में स्वर्ग पिघल जल बनकर,

जैसी पंक्तियाँ कवि की सौन्दर्य-चेतना की विविधता के अंतः साक्षात्कार हो जाने की साक्षी हैं। उक्त सौन्दर्य वैविध्य को निहारने के लिए कवि वन-वन विचरता

एवं घूमता रहता है—

(46)

घूम हिरण-सा दिनभर वन में
बिता छाँह में दोपहरी
मैं मुड़ता घर, हिमगिरि पर
जब होती साँझ सुनहरी।

(47)

गाता मिलन-गीत गिरि पथ पर
मुक्त कंठ निर्झर-सा
मैं फिरता अपने कलरव से
गुफा गुफा को भरता।

वन में घूमते हुए और स्वयं शोर मचाने की ध्वनि से गुफा गुफा को गुँजाते हुए, कवि के पर्वतीय वातावरण के चित्र मन को आनंदित कर देते हैं।

(51)

यह फूलों की मौन माधुरी
यह मृदु हँसी सुधा की।
इस अनंत सुख के सागर में
डूबी छवि वसुधा की

(52)

यह हिमगिरि की पावन शोभा
कल-कल ध्वनि गंगा की
मील वनों में उठती झिलमिल
वीचि चपल मारुत की।

(53)

चले गये सौरभ से उड़कर
मेरे प्राण पवन में
हंस सदृश मैं घूम रहा हूँ
कब से स्निग्ध गगन में।

(57)

चन्द्रबिंब-सा डूब गया मैं
अंबुधि की लहरों में

समा गया मैं एक राग-सा
उठते कंठ-स्वरों में।

(58)

यह प्रशांति जीवन की है या
अनुभवहीन मरण की।
मोह रही है मुझको माया
यह किसके दर्शन की।

उक्त छंदों में कवि जीवन की सुंदरता, आशा, निराशा और अगाध सुख की प्राप्ति की व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति करता है। वह समझ नहीं पाता है कि अगाध सौन्दर्य 'जीवन' है या 'मरण'। उसके लिए कौन-सा माया पक्ष उपयुक्त रहेगा। यही विचारते-विचारते कुछ समय तो बीत ही चुका है—जिसमें सुंदरता के अधरों की आभा तक रीत गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत-पर्वत विषाद में डूबे हुए हैं। आकाश ने हँसना छोड़ दिया है। अँधेरे में पवन का स्पर्श भी भार स्वरूप लगने लगा है।

कवि निराश होकर पुनः गुनगुनाने लगता है—

(68)

मेरी कुंजों में बिखरे हैं
झरे पत्ते पतझर के
पद रखते ही रो उठते हैं
कर सकरुण मर्मर वे।

(69)

मैं हूँ दीन, हीन है मेरी
वास भूमि की सारी।
काँटों की धरती है मेरी
तुम कुसुमों को प्यारी।

(70)

क्या है मेरे पास विश्व में
एक वास को तजकर
क्या बल है मेरे प्राणों में
प्रेम तुम्हारा तजकर।

कवि जान गया था कि उसके पास एक मात्र शारीरिक ढाँचा रह गया है।

उसके प्राणों में तभी तक जीवन रहेगा जब तक उसके हृदय में 'प्रिय' के लिए 'प्रेम' है। 'इसे कुहरे को प्रेम हुआ क्यों रवि की दीप्त-प्रभा से,' कवि अपने जीवन को कुहरे के समान कहकर मन की निराशा व्यक्त कर रहा है। वह प्रकृति परिवेश में परिवर्तन देखकर अपना मन बहलाते हुए गाने लगता है—

(88)

चारों ओर विकल कलरव कर
अब शोभा का सागर।
लगा उमड़ने फूट फूटकर
तुरग, तरुओं से बाहर।

(89)

लहरा उठी वनों में जीवन की
चंचल ज्वालाएँ
जलने लगीं ताप से मधु के
निशिदिन विकल हवाएँ।

(90)

डूबी धारा विपुल लज्जा में
मधु को देख विधुर-सी।
छिप न सकी भीतर ही भीतर
ध्वनि मृदु कुहू-कुहू की।

कवि के जीवन में असुंदर, कुरूप, अपरूप आदि स्वरूपों का महत्त्व नहीं रहा था। विकल कलरव करती दिशाएँ भी कवि के लिए शोभा का सागर प्रतीत होने लगी थीं। यह शोभा श्री पर्यावरण के रूप में छलकने लगी थी। वन-उपवनों में जीवन-जगत की चंचलता के रूप दिखलायी देने लगे थे। पर मधु-सी मिठास के प्रभाव से प्रतिदिन विचलित कर देने वाली पवन गतिशील हो गई थी। मन में स्वयं लाभान्वित होने वाला स्वार्थ नहीं रहा था। अंतरतम में सबको एक समझकर अपनाने वाली दृष्टि जाग गई थी। 'प्रिया' अब मात्र कवि की नहीं बल्कि स्वर-स्वर की, लहर-लहर की होगी, ऐसी व्यंजना व्यंजित होने लगी थी—

(115)

स्वार्थ छोड़कर अब प्रेम हृदय का
फैल गया जग भर में,
अब सबको अपनाने वाली
दृष्टि जगी अंतर में।

(116)

तुम मेरी ही नहीं अकेली
तुम प्रिय हो स्वर-स्वर की।
मेरी प्राची की सुकुमारी
तुम हो लहर-लहर की।

(117)

मैं मर जाऊँगा पर मेरे
जीवन का आनंद नहीं।
झर जावेंगे पत्र-कुसुम तरु
पर मधु प्राण बसंत नहीं।

कवि का यह सत्यांकन पढ़कर तो हृदय एक असीम संतृप्ति से संतुष्ट हो जाता है—शरीर के नाश होने पर जीवन के आनंद का विनाश नहीं होगा। प्रकृति में पत्ते, पुष्प, तरु बिखर जायेंगे, किन्तु ऋतु बसंत तो आती रहेगी।

आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया गया है कि *यौवन के आँसू* को *नंदिनी* नाम से प्रकाशित कराया गया है, किन्तु चंद्रकुँवर बर्त्वाल ने प्रस्तुत काव्य का नाम *यौवन के आँसू* शीर्षक ही अंकित किया था। *यौवन के आँसू* के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा था—"प्रस्तुत गीतिकाव्य पुस्तिका मेरे आठ वर्षों के जीवन का इतिहास है। प्रथमा अंश उस समय लिखा गया था जब यौवनसुलभ कामनाएँ मेरे हृदय में चक्कर मार रही थीं। मध्यमा अंश उस समय लिखा गया जब मैं भयंकर रोगों के चंगुल में फँस गया था और मेरे परिवार में अनेक शोकजनक घटनाएँ घटने लग गई थीं। दो बहनों का निधन हुआ फिर पिता दिवंगत हुये। उत्तमा-गीतिदूत-मोहभंग उस समय लिखे गये जब मैं एकाएक नास्तिक से आस्तिक हो गया। ईश्वर पर दृढ़विश्वास मेरे जीवन का श्वास-प्रश्वास बन गया।

मैं अंत में उन अनंत शोकों और भीषण दुःखों को नमस्कार करता हूँ जो मनुष्य को ईश्वर की सत्ता का बोध-ज्ञान कराते हैं। मरने से पहले जिसे ईश्वर की सत्ता का बोध/ज्ञान एक पल के लिये भी नहीं होता, क्या उसका जन्म लेना व्यर्थ नहीं है।

ओम शांति, शांति, शांति।"

माधवी के गीतों में कवि ने प्रकृति के अनेक सुंदरतम, दृश्यों, बिबों और प्रक्रियाओं का रूपवैभव और उसकी छलकती रूपवाणी को व्यंजित किया है। कवि का मानना है कि प्रकृति का अनेक रूपों में परिवर्तन होता रहेगा पर प्रकृति में प्राण

सदैव जीवंत रहेंगे। वह निष्प्राण नहीं होंगे। कवि की यह दृष्टि शाश्वत है। मन को स्थिर रखने वाली और अर्थवान है। और अंत में कवि उन तत्त्वों का, उन सांसारिक लहरों का आभार व्यक्त करता है जिनके द्वारा उसे जीवन मिलता रहा है। मान-सम्मान मिलता रहा। जिनके बल पर वह जीवन-जगत की विभिन्न प्रक्रियाएँ देख सका। नदी की लहरों का उतार-चढ़ाव, आना-जाना, प्रकट होना और विलुप्त होना देख सका।

(121)

मैं कृतज्ञ हूँ उन लहरों का
प्राण-हंस मुझको माना।
सरि के तट पर रहा देखता
लहरों का आना-जाना।

आरम्भ में उल्लेख किया जा चुका है कि कवि का तीसरा गीतिकाव्य *प्रणयिनी* है। *प्रणयिनी* में एक सौ दस छंद हैं। कोमल अंतस्तल से प्रस्फुटित *प्रणयिनी* के इन छंदों में सरस एवं मोहक प्रेम की अंतः सलिला प्रवहमान हुई है। कवि ने प्रणयिनी के माध्यम से अंकुरित, कुसुमित और गंध-परागमय प्रेम की अभिव्यक्ति सरल एवं मनोरम प्रतीकों और बिंबो के प्रयोगों द्वारा की है। चार पंक्तियों के छोटे-छोटे छंदों में अभिव्यंजित कवि का प्रेम-रूप मात्र वैयक्तिक ही नहीं आध्यात्मिक भी है। कवि का ऐसा प्रेम जनजीवन से दूर नहीं प्रतीत होता बल्कि वह तो सर्वसाधारण के जीवन से संपृक्त है।

एक नवगीतकार के रूप में भी कवि बर्त्वाल की छवि निखरी है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं–

देख दृश्य यह त्रिभुवन, मोहक प्यारा न्यारा
उमड़ी कवि के उर में, नवगीतों-छंदों की धारा।

5

बर्त्वाल की यथार्थवादी रचना-धर्मिता

सुन्दर हो या विकृत, शालीन हो या अशालीन, पर्वत की चट्टानें हों या नदियों का गर्जन, वृक्षों का वैभव हो या फूलों का संसार ! जीवंतता हो या मृत्युबोध, मनुष्य हो या पशु-पक्षी और सूर्य हो या चन्द्रमा, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कारयित्री प्रतिभा ने उक्त यथार्थ जगत के अनेक तत्त्वों पर काव्य रचना करना उपयुक्त समझा है। अपना भारतीय परिवेश-जो कुछ है, जैसा कुछ है वही कवि ने अपनी कविताओं में चित्रित किया है। इसलिये चन्द्रकुँवर बर्त्वाल को यथार्थवादी चेतना का कवि माना जाता है, यही सत्य भी है।

चींटी, कुत्ता, शेर, साँप से लेकर वनदेवता, वनदेवी, हिमालय और आकाश जैसे अनेक विषयों पर कवितायें लिखने का एक सफल प्रयोग किया है कवि ने। अपने कार्य-क्षेत्र में आने वाले गाँवों, नगरों और स्थलों का सार्थक एव प्रासंगिक चित्रण करके कवि ने उन्हें सदा-सदा के लिये अमर कर दिया है। मेरा घर, पँवलिया, नागनाथ (पुरातन) देहरादून, लखनऊ, भावर का वन, शकुंतला (कण्वाश्रम) आदि कविताएँ कवि की पर्यावरण की दृष्टि और स्वस्थ मानसिकता का परिचायक सिद्ध हुई हैं।

सन् 1931 में बारह पंक्तियों में लिखी उनकी सर्वप्रथम कविता 'पुरातन' बारह वर्ष की अवस्था का सृजनात्मक परिचय है। इस दौरान कवि नागनाथ नामक स्थान पर स्थापित मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते थे। इसी स्कूल में उनके पिता श्री भूपालसिंह बर्त्वाल प्रधानाध्यापक थे। कविता इस प्रकार है–

ये बाँज पुराने पर्वत-से
यह हिम-से ठंडा पानी
ये फूल लाल संध्या से भी
इनकी यह डाल पुरानी।

इस खग का स्नेह काफलों से
इसकी कूक पुरानी
पीले फूलों में काँप रही
पर्वत की जीर्ण जवानी।
इस महा पुरातन नगरी में
महाचकित यह परदेसी
अनमोल कूक, झँपती झुरमुट
गुंजार अमोल पुरानी।

यानी नागनाथ के आस-पास बाँज के वृक्ष पहाड़ों की तरह प्रतीत होते हैं। यहाँ पर उपलब्ध जल बर्फ़ की तरह ठंडा रहता है। लाल बुराँस के खिले फूल संध्या की लालिमा लिये हुए होते हैं और फूलों की डालें पुरानी बहुत पुरानी प्रतीत होती हैं। काफलपाक्कू नामक कोयल पक्षी का काफल के फलों के पकने से लगाव रहता है। यह पक्षी ग्रीष्म में कूकता ही रहता है। इस क्षेत्र में आस-पास के विशाल पर्वतों की जीर्णशीर्ण जवानी पीले फ्यूँली के फूलों की तरह काँपती रहती है। इस प्राचीन नगरी में आकर यह परदेशी (अर्थात कवि) चकित है, अत्यंत चकित है। संध्या के झुरमुट में यह अनमोल कूकता स्वर और इसकी अनुगूँज बहुत प्रेरक और मूल्यवान प्रतीत होती है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने कल्पना का सहारा बिल्कुल नहीं लिया है। नागनाथ में जो कुछ उल्लेखनीय उसने देखा, वह लिखा। कहते हैं उस ज़माने में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की उक्त कविता मीडिल स्कूल के सभी छात्रों-अध्यापकों को याद थी। नागनाथ का परिचय देने के लिए वे उक्त कविता की पंक्तियाँ सुना देते थे।

किसी भी कविता की सार्थकता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है ?

इसी प्रकार 'चींटी' कविता का चित्रण पठनीय है–

ऊँची-ऊँची खोहों में दुर्गम सेमल की,
रहतीं कुछ खूँखार चींटियाँ अफ़गानों-सी
लंबी-तगड़ी लाल-सुर्ख बूंदकें ताने
छुरियाँ लटकाए, दर्रों पर पहरा देती
देख दूर से दुश्मन, मच जाती है–
उनमें बड़े ज़ोर की हल-चल-दर्रे-दर्रे
के आगे हो जाती जमा लश्करें उनकी।
बड़े ग़ौर से दुश्मन की गतिविधि परखती

निश्चय देख शत्रु का गुस्से से बेक़ाबू
हो, कुछ वीर चींटियाँ उमड़ टूट पड़ती हैं—
दुश्मन के ऊपर
उसके शरीर में घुसकर
जगह-जगह छुरियों से उसको क्षत-विक्षत कर
उसे विवश कर देतीं
हार मान चिल्लाते-चिल्लाते
पृथ्वी पर उतर भाग जाने को।

एक छोटी चींटी दुश्मन पर, उसके शरीर में घुस कर, छुरियों से उसको क्षत-विक्षत कर चिल्लाते-चिल्लाते हार मान जाने और भाग जाने को विवश कर देती है। चींटी के माध्यम से तत्कालीन प्रशासकों पर गहरी चोट की है कवि ने। क्या यह महत्त्वपूर्ण नहीं है—मनुष्य के परिवेश में सर्वत्र उपस्थित चींटी क्या कुछ नहीं कर सकती है। गहराई से देखें तो देखने में छोटी यह चींटी अचंभित कर देने वाले कार्य करती हुई दिखाई देती है। 'चींटी' कविता के माध्यम से कवि ने छोटे-बड़े का भेद-भाव और छोटे को निर्बल जान लेने की समझ को एक चुनौतीपूर्ण ढंग से अभिव्यंजित किया है। घर के आसपास या बाहर रास्तों में, खेतों में, पेड़ों पर चींटियों की लंबी पंक्तियाँ परस्पर बातचीत करती हैं। और दाँतों में कीड़े-मकोड़े दबाती हुई आती हैं। कविता में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने यथार्थ के धरातल पर आधारित बड़ी बात कह डाली है—

शोर करती आ रही वर्षा वनों से
शब्द भीषण निकलते जाते घनों से।
द्वार का रक्षक सुदृढ़, वह रोष से—
भर, वनों से आ रहे इस चमकते—
विदेशी को देखा क्रोधित सिंह-सा
गुफा से बाहर निकलकर गरजता।

जंगलों की ओर से आती हुई आँधी, तूफ़ानी वर्षा, अनावृष्टि को देखकर वह गुस्से से गुफा से बाहर निकलते हुए सिंह की तरह गरजता है।

इस कविता से यह तो ध्वनित होता ही है कि सुरक्षा के लिए आँगन में बँधा हुआ/घूमता हुआ भोटिया कुत्ता आँधी-वर्षा के मेघों का गर्जन तक सुनकर रक्षा के लिए तैयार खड़ा हो तो चोर डाकुओं या जंगली जानवरों को देखकर उन्हें भगाने के लिए वह क्यों न भौंकता !

हमारे समाज के लिए उपयोगी ये पालतू पशु कितने चौकन्ने दिखाई देते हैं। इन पालतू पशुओं की समाज के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण और अहम् भूमिका है। अब बर्त्वाल की 'एक कुत्ता' कविता पर विचार करें—

घर को आते समय, धूलि से भरी राह पर
पड़ा हुआ देखा मैंने छोटा-सा कुत्ता
मुँदी हुई थीं आँखें उसकी पूँछ शिथिल हो
पड़ी हुई थी शुष्क धूलि में, हाथ-पैर थे
आस-पास बिखरे शरीर से कटे हुए से।
वह था एक श्रात सैनिक-सा जो जीवन भर
कर अभिराम युद्ध जीवन से क्षत-विक्षत हो
अंतकाल में लेट गया था गहन मृत्यु के
दीपहीन प्रांगण में हार मान कर अपनी
मोटर के भोंपू सुनकर भी निर्भय होकर
पड़ा हुआ था वह जीवन से निस्पृह होकर
गंध दूर खाने की सूँघ, लोभ से उसकी
जीभ न अब टपकेगी, अब उसने जीवन में
थी विजय प्राप्त कर ली, रोटी के टुकड़ों के
लिए न मार सहेगा वह, सौ-सौ डंडों की।
ओ मानव, कठोर मानव, दुर्बल था तो भी
वह था मित्र तुम्हारा ही तो।

x x x

मँडराते चमगादड़, उसे घेरकर काली रात
सो गई थी, उसकी सच्ची माता-सी।

कुत्तों के प्रति इन्सान के दुर्व्यवहार और निर्ममता की ऐसी झलक कविता में अन्यत्र नहीं मिलती। कुत्ते की वफ़ादारी ने इंसान की पूरी-पूरी सुरक्षा की सौगन्ध खाई होगी। श्रांत हो जाने पर वह जीवन से निस्पृह होकर धरती में लेटा पड़ा दिखाई देता है। उसके ऊपर चमगादड़, चीलें, सियार, मँडराने लग जाते हैं और कठोर मानव यह दृश्य देखता ही रहता है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की ऐसी कविताएँ पढ़कर मन में सामाजिक यथार्थता की मर्मस्पर्शी तस्वीर उभरती है। सामाजिक कहलाए जाने वाले इंसान के दुराचार-दुर्व्यवहार और दुर्भावना की काली छायाएँ आमने-सामने होती हैं।

बर्त्वाल की 'मनुष्य' कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करने से यह रेखांकित होता है कि मानव कितना संवेदनशून्य हो गया है।

कविता यों है–

उसे वृक्ष छाया देते हैं, नदियाँ पानी
चिड़ियाँ बरसातीं उस पर अपनी कोमल वाणी।
x x x
अमृतयुत वह जल, थल और गगन का स्वामी
वह निरीह, अज्ञान, सर्वविद, अंतर्यामी।
स्वार्थ छोड़ यदि प्रेमभाव वह अपना लेता
यदि अपने भाई को भी वह जीने देता
जाने इस निराश पृथ्वी को क्या कर देता।

पृथ्वी के सभी स्रोत मनुष्य के दोहन के लिये खुले हैं। सभी सुविधाएँ मनुष्य को प्राप्त होने के लिये ही हैं। पर मनुष्य कृतज्ञ होकर भेंट स्वरूप पृथ्वी को क्या कुछ दे पाता है ? कितने मनुष्य हैं जो धरती माता को माता कहते हैं और उसे प्रणाम करते हैं ? भेंटस्वरूप तो वह कुछ भी नहीं दे सकता पृथ्वी को। स्वार्थी बन कर वह प्रेमपंथ अथवा सहानुभूति तक त्याग देता है ! यदि प्रेमभाव का सदुपयोग भी वह कर लेता तो पृथ्वी खूब सम्पन्न रहती। गिलहरी सभी घरों-आँगनों में फुदकती-नाचती और दौड़ती है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की दृष्टि से वह गिलहरी ओझल नहीं हुई और उसकी चंचलता पर यथार्थ कविता लिख दी गई–

आती है गिलहरी नाचती पूँछ उठाती
अपने सर पर अपनी दुम का चँवर डुलाती
कभी बैठ कर इतमीनान से देख कहीं पर–
पड़ा हुआ रोटी का टुकड़ा एक उठा कर
उसे पकड़ दोनों हाथों से नोच-नोच कर
खाती और सहसा ही चंचल पूँछ नचा कर
दौड़ भाग जाती आँगन में, या पेड़ों पर
चढ़कर किसी डाल पर छाया में
सुन मर्मर पत्रों का
गाने लगती है तीखे स्वर से अपने गीतों को।
कभी अचानक ही चुप होकर
कूद पेड़ से नीचे

देख कहीं दरी पर
कोई और गिलहरी उसके पास दौड़ कर
उसकी पूँछ दबाकर मुँह से उसे छेड़ती
दिनभर उसके साथ छाँव में खेल खेलती।

इसलिये कवि ने अपनी 'प्रेम' कविता में कुछ ऐसा व्यंजित किया है–

किसके सरस अपाँगों में तुम छिपे हुए हो !
ओ प्रेम, मेरे प्रेम !
किसके मृदुल अधर पर आ तुम रुके हुए हो,
ओ प्रेम, प्रेम मेरे !
किसके नयन-नलिन में तुम गूँजते निरंतर
मैंने कभी न देखी वह अप्सरा तुम्हारी !

पर्वतवासी होने के कारण कवि को पहाड़ों से एवं पहाड़ी जीवन से गहरा लगाव रहा है। पहाड़ों से संबंधित कवि की अनेक कविताएँ उत्कृष्ट काव्य सृष्टि की धरोहर हैं। पहाड़ों के साथ साथ पहाड़ी जन-जीवन पर कवि ने अनेक उच्च कोटि की कविताएँ रची हैं। जो यथार्थ चित्रण की अद्भुत अभिव्यक्ति प्रमाणित होती हैं। 'पहाड़ प्यारे हैं' कविता की कुछ पंक्तियाँ पठनीय हैं–

प्यारे समुद्र मैदान जिन्हें
उनको नित रहें वही प्यारे
मुझको तो हिम से भरे हुए
अपने पहाड़ ही प्यारे हैं।
पाँवों पर बहती हैं नदियाँ
करती सुतीक्ष्ण गर्जन ध्वनियाँ
माथे के ऊपर चमक रहे
नभ के चमकीले तारे हैं।
आते जब प्रिय मधुरितु के दिन
गलने लगता सब ओर तुहिन
उज्ज्वल आशा से भर आते
तब कृशतन झरने सारे हैं।
छाँहों में होता है कूजन
शाखा में मधुर सुधा-गुंजन
आँखों के,आगे वनश्री के

खुलते पट न्यारे न्यारे हैं।
छोटे-छोटे से खेत और
आड़ू के, सेबों के बाग़ीचे
वन देवदारु के जो नभ तक
अपनी छवि जाल पसारे हैं
मुझको तो पहाड़ ही प्यारे हैं।

उक्त कविता में कवि की सहज, सरल और सत्य अभिव्यक्ति मन पर एक असर डालती है। इसी अर्थ में एक पहाड़ी लोक गीत की पंक्ति कुछ इस प्रकार है—

मृग को अपनी गुफा प्यारी है,
मुझको प्यारा मेरा पहाड़ है।

पाँवों पर नदी का वहना, पतले-पतले अर्थात् कम जल वाले झरनों का आशावान होना, वनश्री के न्यारे-न्यारे पट खुलना, छोटे-छोटे से सीढ़ीनुमा खेत, आड़ू और सेबों के बाग़ और देवदारु के घने जंगल—जो आसमान को स्पर्श करते हैं, अपनी शोभाश्री चारों ओर फैलाए हुए हैं। ऐसे पहाड़ प्यारे हैं कवि को या कवि जैसे हृदय को।

कवि सत्य ही लिखता है—

इच्छाओं का अंत कहाँ है ?
कहाँ लोभ की सीमा,
बहती गर्जन कर तृष्णा की
नदी भयंकर भीमा।

और दूसरी कविता में—

सुंदरता ने महल बनाया
हिम से अपना
हिम ने महल सजाया
सुंदरता से अपना।

और एक अन्य कविता में—

घिर आए कैसे मेघ सजल
कहते ही कहते नयनों में।

मन को झकझोरती भाषा और बुद्धि को शोधती अभिव्यक्ति देकर कवि ने सचमुच काव्य जगत में अमरता प्राप्त की है। शरीर में, मन में काँटों की तरह चुभने

वाला यह समाज मनुष्य की स्वतंत्रता में विघ्नकारी बन कर सामने आ जाता है। कवि ने ऐसे ही समाज को कंटक समाज कहा है—

कंटक समाज तू विघ्न मात्र।
जग-जग तब उपहास पात्र।
तू गर्व-सुरा पी मतवाला
गूँथ दुर्गुणों की नित माला
कर्तव्य बनाता रंगशाला
सिहर रोता यह सकल मात्र।
कंटकपूर्ण विकल उन्नति-पथ
खड़ा मग्न तू है वाहन-रथ
ले जावे हमको किधर जीर्ण
उन्नति-मंदिर के हास्यपात्र।

यह तो सभी जानते हैं कि समाज या मनुष्य जहाँ गुणी है वहाँ अवगुणों की खान भी है। वह प्रतिदिन कितने ही अपराध करता है, गिनती नहीं हो पाती। झूठ बोलने से लेकर किसी की हत्या करने तक। यह प्रक्रिया यथार्थ प्रक्रिया है। इस यथार्थ प्रक्रिया पर यथार्थ काव्यरचना करने की क्षमता सभी कवियों में नहीं होती। चन्द्रकुँवर वर्त्वाल ने अपनी सामान्य लेखनी से ऐसी असामान्य कविताएँ रचकर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

अपराधी प्रवृत्ति वाला व्यक्ति अपराध ही करेगा, चाहे उसे कितनी ही सज़ा क्यों न भुगतनी पड़े। इसी प्रकार भूगोल के नियमानुसार विभिन्न ऋतुओं का पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार का ही असर पड़ता है। ग्रीष्मऋतु का वर्चस्व और उसकी ज्वाला क्या क्या नहीं कर डालती। 'तपोग्रीष्म' व्यंग्य कविता में कवि ने एक यथार्थ, बिल्कुल यथार्थ चित्र ग्रीष्म को संबोधित करते हुए प्रस्तुत किया है—

तपो ग्रीष्म, आग हँसो, पीड़ित संसार करो
झरनों को शुष्क करो, नदियों का नीर हरो
ज्वाला बरसा कराल, क्षुब्ध तुम समुद्र करो।
पत्रों का हृदय सोख, वृक्षों को चूम-चूम
हे विराट, शैलों को—ज्वाला से भस्म करो।

उक्त कविता में आग हँसो, पीड़ित संसार करो, झरनों को शुष्क करो, नदियों का नीर हरो, ज्वाला बरसा कराल, क्षुब्ध तुम समुद्र करो, वृक्षों को चूम-चूम पत्तों का हृदय सोख, शैलों को ज्वाला से भस्म करो—कह कर कवि ने प्रकृति की सहजता

को विकृत करने वाले तत्त्वों पर व्यंग्य किया है। दरअसल ग्रीष्म की तपन होती ही ऐसी है। यह ग्रीष्म की तपन समाज में व्याप्त मानसिक संताप भी है। यह ग्रीष्म की तपन सामंतवादी मनोवृत्ति तो है ही, यह ग्रीष्म की तपन समाज और देश को नष्टभ्रष्ट करने के लिये अपनाई गई प्रक्रिया है। सामंतवादी व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हुए बर्त्वाल की काव्य चेतना सामान्य नहीं, असामान्य एवं अद्‌भुत प्रतीत होती है।

आमतौर पर दूब पर पाँव रखकर चलना अच्छा लगता है। पर पाँव रख कर चलने के लिये दूब नहीं कहती। बर्त्वाल की कविता 'हूवहू' में दूब सुंदरी को अपनी कोमलता पर चरण धर कर चलने के लिये आमंत्रित करती है–

मैं सुकोमल दूब हूँ
मुझ पर चरण धर
सुंदरी जाओ
मधुर स्वर कर
ललित गति से !

इसी प्रकार पुष्प की अभिलाषा व्यंजित हुई है–

मैं मनोहर पुष्प हूँ
मुझको चयन कर
सुंदरी उर में छिपाओ
चूम नव रति से !

उर में छिपाओ चूम नव-रति से कह कर कवि ने स्वाभाविक मनोवृत्ति का चित्रण किया है। यथार्थ की अंतर्वस्तुओं के काव्यांकन के ऐसे प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि कवि बर्त्वाल अपनी भाषिक एवं काव्यात्मक साधना में कितने तल्लीन रहे, समर्पित रहे। यह हिन्दी कविता की सम्पन्नता का द्योतक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल मानसिक रूप से जुड़े ही थे। हिन्दी कविता में प्रवृत्ति एक प्रकार से यथार्थवादी रचना-धर्मिता मानी जाती रही है। इसी प्रवृत्ति से कविवर निराला गहरे रूप में जुड़े रहें। परंपराविरोधी अभियान में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अपनी लेखनी के साथ सक्रिय रहे। अंग्रेज़ी शासन का विरोध, श्रमिकों के प्रति सहानुभूति और उनके मौलिक अधिकारों की रक्षा के प्रति आवाज़ बुलंद करना, किसान का जीवन, हिन्दू-मुसलमान एकता, कबीर की ढोंगविरोधी वाणी का समर्थन, धार्मिक कट्टरता, बंगाल का दुर्भिक्ष, गाँधी जी के सत्याग्रह...आदि व्यंग्य से भरी यथार्थवादी रचनाएँ लिखकर चन्द्रकुँवर

बर्त्वाल ने राष्ट्रीय चेतना से सम्पन्न लेखकों-कवियों की पंक्ति में स्वयं स्थापित होकर अपने लेखन कार्य की सार्थकता को सिद्ध किया है।

1914 से 1918 तथा 1939 से 1941 के बीच दो विश्वयुद्ध हुए। इन दोनों विश्व युद्धों में अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारतीय सैनिकों का इस्तेमाल किया गया था। योरोप में कई भारतीय सैनिक मारे गये थे। यही काल यानी 1857 से भारत में स्वाधीनता संग्राम का रहा है। इसमें जनता पर जुल्म हुए। आन्दोलनकारियों पर गोलियाँ चलती रहीं। सहस्त्रों लोग गोलियों के शिकार होते रहे। अंग्रेज़ों द्वारा संचालित फ़ौज में विद्रोह होने लगे। पेशावर कांड का उदाहरण क्रांतिकारियों के सम्मुख राष्ट्रीय चेतना की छवि प्रस्तुत करता रहा। देसी राजा-महाराजा भी अपने राज्यों में जनता पर जुल्म कर रहे थे। इनके विरुद्ध भी आन्दोलन चलाए जाते रहे।

प्रबुद्ध कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल इन घटनाचक्रों पर निगाहें रखे हुए थे। कवि की 'नवयुग' कविता की पंक्तियाँ रेखांकित करने योग्य हैं—

आओ हे नवीन-युग
आओ हे सखा शांति के।
x x x
आओ बर्बरता के शव पर
अपने पगधर
खिलो हँसी बनकर
उर के अधरों पर।

या 'ज़माना' कवितांश पठनीय है—

अब ज़माना सभी तरह बदल गया है
नया सूरज हो गया, धरती नई हो गई
वह पुराना चाँद डूबा नील नभ में
सितारों की पाँत की सजधज नई हो गई।

यद्यपि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने छायावाद युग में काव्य रचना आरम्भ की थी, पर वे छायावादी कवि नहीं थे। उन्होंने छायावादोत्तर यथार्थ भूमि पर चरण रख कर, स्वच्छंदतावादी मार्ग अपना कर, प्रगतिमुखी चेतना समेट कर काव्य रचनाएँ की हैं। गीत रचना में नये प्रयोग करते हुए वे प्रकृति और जनजीवन को नये रंग-ढंग से व्यंजित करते रहे। प्रकृति-चित्रण में कालिदास की भाँति जनजीवन की अभिव्यक्ति में निराला की भाँति और हिन्दी कविता में हर प्रकार से विकासोन्मुखी बनकर उन्होंने स्वयं हिन्दी साहित्य में नये कीर्तिमान स्थापित करने के लिये जीवन खपा दिया।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल क्या काव्य रचना, क्या गद्यलेखन—दोनों ही दृष्टियों से स्वतंत्र होते हुए भी निराला के समानांतर आगे बढ़ते रहे। सन् 1947 सितम्बर तक—मृत्युशय्या पर पड़े होने पर भी वे लेखन में सक्रिय रहे। उनका सम्पूर्ण लेखन अभी प्रकाश में नहीं आ सका है। पर जितना प्रकाशित हुआ है वही कवि को हिन्दी का स्थापित साहित्यकार कहलाने के लिये पर्याप्त है। गणना की दृष्टि से भी और गुणवत्ता की दृष्टि से भी।

6

राष्ट्रीय कविताधारा के कवि बर्त्वाल

इतिहास साक्षी है कि प्राचीन भारत में राजा-महाराजाओं में व्याप्त परस्पर शत्रुता के कारण देश में एकता नहीं रह गई थी। बार-बार लड़ते-भिड़ते उनकी शक्ति क्षीण होती चली गई थी। यह अवसर था जब विदेशी आक्रामकों ने भारत पर बार-बार आक्रमण किये। देश की धनसम्पदा लूटी-खसोटी। आक्रामकों ने अपने पाँव जमाने आरम्भ किए और अंततः समूचे देश की सत्ता पर क़ब्ज़ा पा लिया। कई शताब्दियों तक भारत मुग़लकालीन गुलामी झेलता रहा। भारत गुलाम हिंदुस्तान कहलाया गया। जनता पर जुल्म होते रहे। सामाजिक संगठनों पर कुठाराघात किए गए। राष्ट्र प्रेम से ओतःप्रोत कुछ देशभक्त न्याय के लिये तब भी लड़ते रहे। पर उनमें अधिकतर तलवार की धार से मार डाले गए। या यों कहें कि वे शहीद हुए।

शताब्दियों तक मुग़लों की गुलामी झेलते देश पर अंग्रेज़ों ने क़ब्ज़ा किया और वर्षों तक शासन किया। अंग्रेज़ों ने भी जनता को कुचला। जनता की आशाओं को अंकुरित होने ही नहीं दिया। देश के धन का दुरुपयोग अंग्रेज़ अफ़सरों और राजा-रानियों द्वारा किया जाता रहा। शान-शौकत के लिये, खाने-पीने के लिये और रहने-घूमने के लिये।

पर जब देश की जनता पर ज़्यादा ही गुलामी लादी जाने लगी तो कुछ देशभक्त जनता की सुरक्षा के लिये, अंग्रेज़ शासन से मुक्त होने के लिये अपनी आवाज़ उठाने लगे। सर्वप्रथम 1857 में मेरठ में शहीद मंगल पांडे ने अंग्रेज़ प्रशासन के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। तदुपरांत शहीद चंद्रशेखर आज़ाद और शहीद भगत सिंह ने अंग्रेज़ों को भारत छोड़ देने के लिये बाध्य करना आरम्भ किया। पर वे फाँसी पर लटका दिये गये। महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय सैनिक बन कर भाग लेने लगे। इन नेताओं को और इनके अनुयायियों को जेलों में बंद रहना पड़ा। यातनाएँ सहनी पड़ीं। हज़ारों लोगों को बलिदान देना पड़ा। देश में अंग्रेज़ों के विरुद्ध ज्वाला भड़क उठी। अंततः एक

लंबी लड़ाई लड़ने के बाद भारत को अगस्त 15, 1947 के दिन स्वाधीनता प्राप्त हुई। राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ भारतीय साहित्य में भी स्वाधीनता प्राप्ति संबंधी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया। राष्ट्र प्रेम की कविताएँ लिखी गईं। राष्ट्रीय नाटक लिखे गये। प्राचीन संस्कृति की स्मृति में और समाज पर हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध कहानियों एवं उपन्यासों की रचना होती रही।

हिन्दी में प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, प्रेमचन्द, भारतेंदु, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृत लाल नागर, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', तारा पांडे और श्यामनारायण पांडे आदि अनेक कवि लेखकों ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए संचालित संग्राम की अवधि में राष्ट्र प्रेम, नवजागरण, संस्कृति-संरक्षण, आत्मबल संबंधी साहित्यिक रचनाएँ लिखीं और प्रेरणा तथा प्रसार के लिये उन्हें प्रकाशित करवा कर जन-जन में प्रचारित किया। साहित्यकार की लेखनी सबल तो होती ही है। वह प्रेरक बन कर समाज में कई महान परिवर्तन कर डालती है। इसमें दो मत नहीं हैं कि हिंदी रचनाकारों की लेखनी ने समूचे देश में राष्ट्र प्रेम की लहर फैलाई। हिन्दी स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये युद्धरत जनजन की भाषा बनी।

श्री मैथिलीशरण गुप्त (जिन्हें राष्ट्र कवि की उपाधि से सम्मानित किया गया) ने अपनी लेखनी द्वारा देशभक्तों का आह्वान किया—

हम क्या थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

भारत-भारती जैसा राष्ट्रीय काव्य लिखकर राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त कई कवि और लेखकों के प्रेरणा स्रोत बने। गुप्त जी ने भारतीय शौर्य, संस्कृति और मानवधर्मिता का बोध कराया और जन-जन को जगाया। देश को गुलामी से मुक्त करने के लिये जनता का आह्वान किया।

'मेरा देश : दो चित्र' कविता में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने 'हम क्या थे' क्या हो गये हैं स्थिति का एक मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है—

हिमगिरि के शिखरों पर चढ़कर मैंने देखा
दौड़ रही थी दूर, समुद्र में गंगा की रेखा।
मृदु कलरव करती, पुष्पित पुलिनों के भीतर
हरियाली से घिरे ग्राम उठकर फूलों से
देख रहे थे जल की छवि पुष्पित फूलों में।

सुनते थे विमुग्ध और मृदु लहरों का कूजन
मैंने देखे नगर व्यस्त हो जिनमें जीवन।
दौड़ रहा था उड़ते हुए समय के पीछे
और कहीं चुपचाप किसी छाया के नीचे
खड़ी हुई ग्वालिन कोई उन्मद अलस दृगों से
देख रही थी नील गगन में दल मेघों के।
मेरे पुण्य देश की एक झलक सुन्दर
बसी रहे हे प्रभु, इन आँखों में जीवन भर।

और अब–

किन्तु दूसरे ही क्षण, विस्मित मैंने देखा,
गंगा, नहीं-नहीं, वह तो थी दुख की रेखा।
ये श्रीहीन पुलिन, सिर धर सूनी सिकता पर
मेरी मातृभूमि थी रोती पीड़ित होकर।
अंधकार, अज्ञान, द्वेष, हिंसा से जलते
ग्राम और पुर थे मारुत में अहरह चलते।
थे मलीन धूम्या के झोंके प्रलय घनों से
हा-हा रव उठता था नगरों और वनों से।
विकृतवेश, हाथों में लेकर सूखे खप्पर
नाच रही थीं नग्ननारियाँ विस्वर हँस कर।
नगरों में, ग्रामों में चारों ओर खड़े थे
क्षीण युवक, छायाओं में छिपते प्रेतों से।
यही देश है मेरा, मैंने पूछा रोकर
हाँ-हाँ, यही-यही, बोला कोई हँस-हँस कर।

सम्पन्न देश पराधीनता की बेड़ियों से प्रताड़ित होकर किस प्रकार टूटा, बिखरा और निस्पृह बना। किस प्रकार गाँव और नगर अंधकार और अज्ञानता, बैर-भाव और हिंसा की भावना से घिरे। चारों ओर से हा-हाकार की ध्वनि सुनाई देने लगी। विकराल रूप धारण करके हाथों में सूखे खप्पर लेकर नारियाँ हँस-हँस कर नाचने लगीं। कृशकाय युवक भूतों के समान दिखायी देने लगे। जन-जन में आत्म-गौरव जगाने के लिए चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की उक्त कविता एक मानक है जिसमें मर्मान्तक सत्यों को उद्घाटित किया गया है। देश के पीड़ित जनों, भूखों, मृतकों, हताश, निराश, दीन-हीनों और अपने को पशुवत समझने वालों को यह जीवन प्रदान करने के लिए

नवयुग को आह्वान करता हुआ कवि कहता है—

आओ हे नवीन युग
आओ हे सखा शान्ति के
चलकर झरे हुए पत्रों पर
गत अशांति के।
आओ बर्बरता के शव पर
अपने पग धर,
खिलो हँसी बनकर
पीड़ित उर के अधरों पर।
करो मुक्त लक्ष्मी को
धनियों के बन्धन से
खोलो सबके लिए द्वार
सुख के नन्दन के।
दो भूखों को अन्न और मृतकों को जीवन
करो निराशों में आशा का बल का वितरण।
सिर नीचा कर चलता है जो,
जो अपने को पशुओं में गिनता है
रहता हाथ जोड़ जो उसे गर्व दो तुम
सिर ऊँचा कर चलने का
ईश्वर की दुनिया में भेद न होये कोई
रहें स्वर्ग में सभी, नरक दुख सहे न कोई।

'प्रेमवाणी' कविता में कवि ने स्वाधीन भारत में ग़रीबों को जीने का अधिकार मिल जाने पर स्वाभाविक प्रसन्नता व्यक्त की है—

कर धरा पर अमृत वर्षण
आज तक था जो भिखारी
वह नहीं भिक्षुक रहेगा
अब सकेगा जी।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अन्य हिन्दी कवियों की तरह अंग्रेज़ों की गुलामी से दुखी थे। अंग्रेज़ अफ़सरों की भारतीयों को दबोचने एवं प्रताड़ित करने की मनोवृत्ति स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों के लिए घृणित थी। अमीरों का ग़रीबों के प्रति क्रूर व्यवहार असह्य था। स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरान्त यह आशा बनी कि अब तो पृथ्वी

पर अमृत ही अमृत मिलेगा। विष पिलाने वालों को विश्व से बाहर खदेड़ दिया जाएगा। अब भिखारी भिक्षुक का जीवन नहीं बिताएगा। वह नये समाज में, नये वातावरण में, स्वाधीन भारत में गर्वपूर्वक जी सकेगा। उसे भी रोटी, कपड़ा और मकान उपलब्ध होगा।

इसी प्रकार 'नूतन युग' कविता में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल सामंतशाही युग को मरा हुआ या मरता हुआ मानते हुए, विहसँते हुए और नूतन युग का स्वागत करते हुए लिखते हैं—

कहीं वह युग मर गया है / कहीं मरता जा रहा है।
एक नूतन युग विहँसता / विश्व भर में आ रहा है।
टूटती सब ओर हैं / सामंतशाही बेड़ियाँ
निरंकुशता के हृदय पर / विपद का भय छा रहा है।
उठ रहे दलित, सदियों की पतन की नींद से।
साम्य का आलोक सबको / एक रूप बना रहा है।
ग़रीबी शोषण मिटाने का / अटल संकल्प कर
आदमी सब ओर देखो / सिर उठाकर गा रहा है।

कवि आशावान है कि दलित जनों के अच्छे दिन आ गए हैं। वे प्रगति करेंगे और रहन-सहन में ऊपर उठेंगे। देश के नेताओं का समतावादी प्रशासन सभी जनों, जातियों और संप्रदायों को एकता के सूत्र में बाँधेगा। ग़रीबी और शोषण मिटाने के लिये अटल संकल्प किए जायेंगे। स्वाधीनता मिलने पर इसलिये भारतीय मनुष्य अपना ही सिर उठाकर, गीत गाकर मस्ती से झूम उठता है। 'प्रतिज्ञा' कविता में स्वयं कवि ने क्रांतिकारियों की भाँति दृढ़ निश्चय किया। या तो वह संग्राम में विजय प्राप्त करेगा अन्यथा लड़ते-लड़ते शहीद हो जायेगा। वह ज़ालिम प्रशासकों के सामने कभी नहीं झुकेगा।

एक :

मेरे शरीर को वह चाहे / टुकड़े टुकड़े कर खा डाले,
पर मैं अपना सिर ज़ालिम के / पैरों पर नहीं झुकाऊँगा
यह जान चली जाय़ तो है / मुझको इसकी परवाह नहीं
मैं या तो विजयी होऊँगा / या लड़ता मारा जाऊँगा।

दो :

बलि दूँगा जननी मैं जीवन की बलि दूँगा
तुम्हें मुक्त करने को माँ, सौ बार मरूँगा।

थाम चक्र पीड़न का मैं अपनी छाती पर
उसे क्षीण कर दूँगा, उससे मैं न डरूँगा।
व्यर्थ बहेगा नहीं रक्त मेरा पृथ्वी पर
रक्त उशा से मैं रवि को उत्पन्न करूँगा।

हे भारत माता, तुम्हें दासता से मुक्त कराने के लिये मैं अपने जीवन की बलि दे दूँगा, और सौ बार जन्म लेकर सौ बार ही बलि दूँगा। इस धरती पर मेरा खून व्यर्थ नहीं बहेगा बल्कि रक्तिम भोर की किरणों (आशा) से मैं आशा का सूर्य उगाऊँगा।

'मेरा धर्म' कविता गें पुनः कवि जाति, सम्प्रदाय, भेद-भाव, बैर भाव भुला देने के लिये कहता है। वह अपनी प्राचीन परंपरा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अपनाने का पक्षधर है–

मेरे धर्म मुझे अब तुम उदार होने दो
निखिल विश्व में मिलकर अपनापन खोने दो।
खाने दो मुझको अब अछूत के साथ बैठकर
जाने दो मुझको मुस्लिम के घर के भीतर।
पीने दो मुझे ईसाई घर का पानी
सुनने दो अतींद्र हो जग में सबकी वाणी।
मैं न चाहता दलित किसी को जग में कहना
होना सब एक संमान, सबको भाई कहलाना।

स्वाधीन मानव-समाज में उदारतापूर्वक रहने की कामना करता हुआ कवि समूचे विश्व में मिल-जुल कर रहने के प्रति उन्मुख है। वह अछूत के साथ बैठकर भोजन करने, मुसलमान के घर जाने, बैठने और ईसाई परिवार का जल पीने के लिये तैयार है, क्योंकि समाज तोड़ने के लिये अब तक यही सब कुछ वर्जित मनवाया जाता रहा है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल संसार में किसी को भी दलित कहने के पक्ष में नहीं थे। वे सभी जनों को समान और भाई कहलाना चाहते थे।

'ब्रिटेन के प्रति' कविता में ब्रिटेन के कुचक्रों के प्रति संकेत किये गये हैं। भारत को पराधीन बनाकर अन्य देशों में अपना यश फैलाने वाला ब्रिटेन वास्तव में क्या है? कवि ने ऐसा एक चित्र प्रस्तुत किया है–

पश्चिम में वह स्वतंत्रता का देवदूत है
पर पूरब के लिये भयंकर एक भूत है।

पश्चिम में साम्राज्यवाद का वह दुश्मन है
पूरब में साम्राज्यवाद उसका जीवन है।

क्या दोहरी नीति अपनाने वाला राष्ट्र वास्तव में राष्ट्र है ? पूरब में साम्राज्यवाद का प्रचारक वह अन्य देशों में साम्राज्यवाद के बहिष्कार की नीति अपनाता है।

'सवर्णों के प्रति' कविता के माध्यम से चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने समाज में वर्षों पुरानी चली आ रही अछूतों के प्रति भेद-भाव एवं कुटिल भावना का चित्रण किया है। यथा—

लाखों वर्षों से अछूत पैरों के नीचे
दबे तुम्हारे, हाय हाय कर रोते हैं।
तुम्हें दया कुछ नहीं, तुम्हारे कुटिल पदों को
अपने ही शोणित के जल से धोते हैं।

हे मानव, हाय, हाय, कहते-चीख़ते अछूतों के प्रति तुम दयावान क्यों नहीं होते ? मनुष्य में मानवता क्यों लुप्त हो रही हैं ? यह पिछड़े हुए समाज का ही तो प्रतिबिम्ब है।

'स्वदेश' कविता के रूप में कवि ने सरल भाषा में उद्‌बोधन गीत की रचना करके अपनी अटूट राष्ट्रीय भावना का परिचय प्रस्तुत किया है। भविष्य में जीवन की महत्ता और साहसी बनकर आगे बढ़ते रहने के लिए कवि प्रेरित करता है—

उठो, उठो, ओ स्वदेश
ओ स्वदेश उठो उठो।
हुआ कभी का प्रभात
खुली सभी ओर रात।
देख रहा राह कर्म
यत्न करो, उठो, जुटो।
छोटा जो आन पड़ा
होगा कल वही बड़ा।
क्या है जग में असह्य
साहस यदि क्षीण न हो।
x x x
लानी है कीर्ति नई
अब न और अधिक लुटो।
उठो उठो, स्वयं उठो

लानी है कीर्ति नई।
जागो औरों को जगाओ
अर्जित कर शक्ति नई।

कवि समाज में, देश में, कीर्ति लाने का आह्वान करता है। वह अधिक न लुटने के प्रति समाज को सावधान करता है। हे देशवासियो, एक नई शक्ति प्राप्त करके स्वयं जागो, औरों को जगाओ।

इसी प्रकार 'जनयुग' कविता में चन्द्रकुँवर ने साम्राज्यवाद पर ख़ूब प्रहार किया है—

आज तक अन्याय न था
मार-सा रखा उसे।
और वह भी अब न
दुश्मन पर दिखाएगा दया।
काँपती है दीनसत्ता
दमन है पछता रहा।
व्यर्थ ही साम्राज्यवादी।
जाल निज रचता रहा।
आ गया है सबल जनयुग
मूक जनता उठ गयी।
मिटा अत्याचार सुख से
हो रही पृथ्वी नई।

इस प्रकार चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने देशप्रेम, नवचेतना, एकता, समानता, न्याय, मानवता का व्यवहार करने और गुलामी-की ज़ंजीरें तोड़ने के लिये अपने मन के सबल उद्‌गार काव्यात्मक अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किये हैं।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की उपर्युक्त कविताओं में नारे नहीं हैं। बल्कि उनमें हृदयस्पर्शी चोटें हैं, प्रहार हैं, प्रताड़नाएँ हैं—जिनसे भारतीय समाज वर्षों तक पीड़ित एवं प्रताड़ित रहा है। गहरी राष्ट्र प्रेम की भावनाएँ हैं इनमें।

कविता के लिये 'महात्मा गाँधी की बकरी' विषय चुनकर कवि ने निश्चय ही शांति, अहिंसा और सत्य जैसे गाँधी जी के सिद्धांतों को आधार बनाकर अपनी महत्त्वपूर्ण काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।

'महात्मा गाँधी की बकरी' अहिंसा की भक्तिन गहरी, हाथ में लेकर गीता को हृदय में रघुवीर-सीता को, एक दिन चुगते-चगते दूर, घने जंगल में निकल गई। शांत

आश्रम में पली हुई महात्मा गाँधी की बकरी—

अकेली उसको वन में देख
दिनों से भूखी बाघिन एक।
ज़रा मूँछों में मुस्काई
अदब से मगर पास आई।
यह देख मन में बहुत डरी
महात्मा गाँधी की बकरी
किन्तु बाहर से रह गम्भीर
उठा दायाँ खुर बोली धीर
तुम्हारा हो कल्याण बहन
ख़ूब तुम मिलीं, तुम्हें इस दिन
अहिंसा का दूँगी उपदेश
करूँगी दूर तुम्हारा क्लेश।
कह उठी यह शुचि शांतिभरी
महात्मा गाँधी की बकरी।

उक्त कविता से यही ध्वनित होता है कि गाँधी जी के सिद्धांतों का प्रभाव पशुओं तक पर पड़ता रहा, तो मनुष्यों पर पड़ना ही चाहिए था, क्योंकि मनुष्य पशु से अधिक बुद्धिमान तो होता ही है।

निसंदेह कवि की राष्ट्रीय चेतना सम्बन्धी कविताएँ भी बिरली, अनोखे रूप में कही गई और मर्मस्पर्शी हैं। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का कवि काव्यात्मक अभिव्यक्ति में अपनी राष्ट्रीय पहचान कुछ अलग मनोमुग्धकारी एवं गहराई लिये हुए होता है।

7

कवि की लम्बी कविताएँ : पर्यावरण एवं परिवेश

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने लगभग चालीस लम्बी कविताओं की रचना की है। इस पृष्ठभूमि में एक तो आंचलिक जनजीवन उजागर करने की चेतना कवि में रही। इसलिए स्थानीय विषयों को चुनकर उनके माध्यम से स्थानीय जीवन का पक्ष कवि ने लम्बी कविताएँ—सरल, सहज रूप में लिखकर सार्थक रूप में अभिव्यक्त किया है। इस कोटि की कविताओं से पर्वतश्री, मेघलोचन, हिमवंत, कफ्फू, हिममाधुरी, काफलपाक्कू, स्वीलीघाम, जीतू, देहरादून, वनदेवता, वनदेवी, आदि मुख्य हैं। दूसरे सार्वजनिक जीवन में रचे-बसे विषयों पर रची गई उनकी लंबी कविताओं में कोयल, उदासी, जीवन-सरिता, स्निग्ध शान्ति, आकाश, यम, (महाअतिथि) अशरण-शरण, मृत्युंजय, विजयादशमी, बंगाल का दुर्भिक्ष, विवाहिता, अल्लाह की ज़बान आदि विषयों पर रची गयी कविताएँ हैं। कवि की लम्बी कविताओं में आख्यानात्मक विषयों का वर्णन चित्रित हुआ है जो कुछ विशिष्ट अर्थतत्त्वों को लेकर गम्भीरता लिये हुए है। अभिव्यक्ति का ढंग कुछ निराला है। कुछ हृदय में रचा-वसा है। पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। ऐसा नहीं कि सामाजिक अस्थिरता से पृथक् है बल्कि उसका उससे अटूट लगाव प्रवाहित होता है। इसलिए हिन्दी कविता-संसार में चन्द्रकुँवर की लंबी कविताएँ चर्चित रही हैं। जैसे जीतू, काफलपाक्कू, स्वीलीघाम, देहरादून, वनदेवी, वनदेवता, आदि कविताएँ पर्वतीय समाज में ही समादृत नहीं हुई हैं बल्कि समूचे हिन्दी जगत में चर्चित हुई हैं। ज्यों ज्यों देश के कोने-कोने में आंचलिकता का मूल्य और महत्त्व बढ़ता जायेगा त्यों-त्यों स्थापित, मर्यादित, मान्य एवं जनप्रिय सांस्कृतिक तत्त्वों का भी महत्त्व बढ़ेगा। ऐसे रचित साहित्य की चर्चा होगी। उसका विश्लेषण होगा। उसका महत्त्व आँका जायेगा। ऐसे साहित्य की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। सांस्कृतिक साहित्य-लेखन की दिशा में ये प्रेरक तत्त्व सिद्ध होंगे। काफलपाक्कू को पर्वतीय क्षेत्र में एक प्रिय पक्षी माना जाता है। वह वृक्ष की शाखा में बैठकर मीठी वाणी में काफलपाक्कू—काफलपाक्कू बोलता रहता है। उसकी मीठी वाणी में जीवंतता,

आशंका और विवशता अभिव्यक्त होती है। बसंत के बीतने पर यह पक्षी अनायास मीठी पर करुण वाणी में रातदिन गाता रहता है। जीवंतता लिए हुए ये पंक्तियाँ देखी जा सकती है–

गलने लगती करुण-स्वर से जब हिमभरी हिमानी
जब शिखरों के प्राण पिघलकर बह जाते बन पानी
बाक़ी रहते पाषाण खण्ड
जिन पर तपता दिनकर प्रचंड।
x x x
पी इस मधुर कंठ का अमृत, खिल उठती वन-रानी,
लता-लता में होने लगती गुंजित नयी जवानी,
x x x
क्षण भर में कर देते तुम खग, इस पृथ्वी को नन्दन।

और आशंका में डूबी कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरणीय हैं–

x x x
मैं तो विवश यहाँ आया हूँ
पर यह कैसे आया ?
क्या मुझको मेरी जननी का है सन्देश कुछ लाया,
मुझसे कहने को आज रात, आया कहने यह कौन बात,
अथवा क्या वह शैल बह गये, जिनमें यह था गाता,
उखड़ गये वे पादप जो थे, इसके आश्रय दाता,
क्या उस वन में लग गयी आग, आया जो यह निज विपिन त्याग।
x x x
रह गये शेष नंगे पहाड़, हिमहीन, दीन, सूखे, उजाड़
बच पाया क्या कोई न मार्ग, जो आया यह हिम शैल त्याग।

देहरादून जैसे मैदानी क्षेत्र में जहाँ काफल नहीं होते अनायास काफलपाक्कू पक्षी का मीठा करुण स्वर सुनकर कवि को आशंका हुई कि उन ऊँचे शिखरों में तो मीठी करुणा फूटती ही है। पर इस मैदानी क्षेत्र में वैसा तो कुछ भी नहीं है। फिर क्यों यह पक्षी करुणा बिखेरता उड़कर यहाँ आ पहुँचा है। सम्भवतः कोई दुखद संदेश लेकर आया है। अन्यथा वह मैदानी क्षेत्र में कवि के पास नहीं आता वह तो पेड़ की टहनी पर बैठकर मीठा करुण-स्वर उँडेलता है। कवि पूछता है–

कहाँ खो दिया तुमने अपना, सरल हृदय हे ! सुन्दर,
किस मानव ने तुम्हें दिखाया, सोने का यह पिंजर,
होने पर भी जीवन समान, क्यों रहते हो तुम दूर प्राण ?
तुम तो आकर दे जाते थे, हर बार मुझे आशीर्वचन,
जब माँ के चरणों पर अपना, करता मैं अर्पित जीवन,
सुन्दर था कितना बाल्यकाल, मिल पायेगा क्या विहगबाल ?

इसी प्रकार 'जीतू' कविता में अभिव्यंजित प्रकृति के विविध विचित्रता लिए हुए रूप और जीतू का अस्तित्व वर्णन इस प्रकार हुआ है–

वह चरवाहा था गिरि के शिखरों का वासी
किन्नर स्वर से, अमर रूप से, मारुत बल से
शिव पवित्र कैलास, श्री गंगा निर्मल पावन
मुरलीधर-सा ऊपर मधुर बंशी वादन से
उसके मुख पर थी हिमगिरि की दीप्ति दमकती
x x x
वाणी में वर्षा के मेघों की जलमयता
चपल चाल में थी बाँजों-सी अडिग कठिनता
कैसे थे वे शिखर ? शिखरों की अनोखी हरियाली
जहाँ बरसते हिम के फूल शिशिर में मनहर
ढकते धरती, भोजपत्र तरु उच्च गिरि शिखर
ढक जाती नदियाँ हिम से दोनों तट मिलते
नीचे जल सहसा बढ़ता, ऊपर चरवाहे चलते
सरिता के हिम से बढ़ जाते तर्जन-गर्जन
फैला रहता हिम में भयदायक सूनापन
जहाँ बसंत उदित होता सूरज के मुख-सा।

स्वीलीघाम (अर्थात् गोधूलि के समय की धूप जब शीत से व्याकुल नव प्रसवा नारी गोद में बच्चा लिये घर के भीतर से बाहर क़दम रखती है।) की अभिव्यक्ति करता हुआ कवि व्याकुल है, वह उसे प्राप्त करने के लिये बाँह आगे बढ़ाता है पर सुनता है–न छुओ, मैं मृत हूँ। मेरी गणना जीवितों में नहीं होती। यह कहकर वह लुप्त हो जाती है–समा गई पृथ्वी में बिजली-सी गिर गई तरु पर।

किन्तु पुनः कोई गोधूलि उसको बन में लावेगी, आशा है एक यही, जीवन में। बच्चे को गोद में लिये नवप्रसवा नारी गोधूलि की धूप सेंकने के लिये व्याकुल

रहती है। इसी तरह पर्वतवासी आशाएँ लिये हुए जीवन जीने के लिये व्याकुल रहते हैं। वह गोधूलि कब आएगी ?

जब जन-जीवन में व्याप्त निराशाएँ आशाओं में परिवर्तित होकर फलीभूत होंगी।

उपर्युक्त चर्चित लम्बी कविताएँ आंचलिक अस्मिता की द्योतक हैं। जो आंचलिक जनजीवन के साथ-साथ जीवंतता लिये हुए रहेंगी। सार्वजनिक लम्बी कविताओं में 'यम' (महा अतिथि) कविता चर्चा का विषय बनी रही है। पूरे सात वर्षों तक क्षयरोग से ग्रस्त रहते हुए कवि को मृत्यु बोध होता रहा। कवि ने मृत्यु को कई रूपों में देखा। मृत्यु सम्बन्धी कई कविताएँ रचीं। 'यम' कविता की लाक्षणिकता एवं व्यंज़ना काव्य भाषा जगत को काफ़ी ऊँचा उठा ले गई है—

आये हैं मृत्युदेव द्वारों पर, शंख में
स्वागत के स्वर भरो, महा अतिथि चरणों का,
सिर से पूजन करो।
पीने को एक क्षुद्र जीवन के स्रोत की महार्णव स्वयं चले
और राह जिस डर ने देखी नित आपकी,
नीले नभ के तले
पाते जिसमें प्रवेश भले बुरे सभी जो जग ने पीड़ित किये
गौतम-सिद्धार्थ, कृष्ण, रामभद्र, जानकी इसी राह सब गये।

x x x

सोचूँ मैं क्योंकि बुरा होगा वह देश
तुम करते शासन जहाँ,
सोचूँ मैं क्योंकि तिमिर होगा उस लोक में
तुम हो पावन जहाँ !
आता हूँ साथ मैं तुम्हारे संसार से,
चिता भस्म को रमा।
जीवन की चाह नहीं, मुझको अब मृत्यु से
मरने का भय नहीं।
करती है मृत्यु सदा जीवन को पूर्ण ही
इसमें संशय नहीं।
कष्टों से म्लानवर्ण पृथ्वी को छोड़ मैं,
जाता उस लोक में
शास्ता यम जहाँ नहीं कोई भी शोक में।

किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य में यम संबंधी विशद आध्यात्मिक संदर्भ में ऐसी लम्बी कविता उपलब्ध नहीं है। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल क्योंकि मृत्यु से जूझ रहे थे, या यों कहें कि मृत्युभय ही उनका जीवन रह गया था, इसलिये उन्हें यह कहने में भय न रहा—'आता हूँ साथ मैं तुम्हारे संसार में/चिता भस्म को रमा। जीवन की चाह नहीं, मुझको अब मृत्यु से मरने का भय नहीं।' उन्होंने मृत्यु से साक्षात्कार करने के लिये उक्त सबल कविताएँ रचीं/इसी सन्दर्भ में 'अल्लाह की ज़वान' जैसी लम्बी व्यंग्य कविता लिखने की सामर्थ्य चन्द्रकुँवर जैसे महान कवि में ही देखने को मिलती है—

पंडित जी बोले—स्वर्गलोक में
संस्कृत बोली जाती है
मुल्ला जी बोले—अल्लाह को
अरबी ज़वान ही भाती है।
इस पर मचा भयानक शोर
होने लगी लड़ाई घोर
मुल्ला जी ने पकड़ी चोटी
पंडित जी की मोटी-मोटी।
और इधर पंडित जी ने, दाढ़ी
मुल्ला जी की नोची झाड़ी,
एक पहर तक ज़ोर-शोर से
लड़ आखिर मर गए अभागे
और उसी दम खड़े हो गए
दोनों जा ईश्वर के आगे।

'विवाहिता' लंबी कविता में बचपन की सहज स्मृतियाँ आँखों में तैरने लगती हैं—

बाँजों के बीच खड़ा मन्दिर वह प्यारा
आँगन में डाल शिलंगी की
निशिदिन मीठी यादें भरती
सिर के ऊपर गिरती अविरल जलधारा।
x x x
है मुझे याद वह पेड़ चीड़ का सुंदर,
रह कर दिनभर जिसके तल पर

हम आँखों में आँसू भर कर
होते थे विदा, डूबते थे जब दिनकर।
पर कैसे भूलूँ मैं उसको जीचन में
शैशव में नित समीप रह कर
मुझको उसने सुख देकर
जो समा गया मेरे नयनों में, मन में।

बचपन की मैत्री कहाँ होती है विस्मृत ! वह सदैव आँखों में, मन में नाचती रहती है ! वे स्थान, वे वस्तुएँ, वे घटनाएँ यादकर आँखें पिघलने लगती हैं। 'आकाश' लंबी कविता में कवि ने आकाश का आदिहीन और अंतहीन होना स्पष्ट कहा है। आकाश को ईश्वर अथवा ईश्वर से भी महान होना कहा है। अनंत आकाश की महिमा निराली है। तारों से भरा हुआ। सूरज को सँभाले हुए। चन्द्रमा को थामे हुए। ज्ञानविज्ञान का अनोखा संसार है आकाश। पर जनजीवन से दूर, वहुत दूर ही क्यों हो ? तुम सुखदाता हो, पिता समान बनो और मैं तुम्हारा पुत्र बना रहूँ—

हे आदिहीन, हे अंतहीन
हे काल के आदि मध्यावसान
तुम ही हो ईश्वर अथवा क्या
तुम हो ईश्वर से भी महान
x x x
धिक है विज्ञान-ज्ञान जिसने
तुमको जीवन से दूर किया
धिक है विज्ञान-देवता हमें
जिसने दानव-सा क्रूर किया।
मेरे प्राणों के ऊपर तुम
हे सुख के नील-विज्ञान तंत्र
मैं पुत्र तुम्हारा चिर अनुगत
तुम मेरे स्नेही पिता बनो।

'पर्वतश्री' लंबी कविता में पर्वतश्री के माध्यम से जीवन की विषमताएँ झेलने की पीड़ा अभिव्यक्त करता है कवि—

मैंने जीवन भर पर्वत ही पर्वत देखे
दुर्गम, वर्फ़ानी, उजाड़, हिमधाम सरीखे
उठते-गिरते पथ का ही क्रम मैंने जाना

हिमशिखरों के नयनों ने सीखा अपनाना।
गंगा गिरती है मेरे गिरि के शिखरों से
ऋतुओं के देखे मैंने सहसा परिवर्तन
नव-निदाघ में फूलों का नवपरिमल वर्षण।
x x x
संध्या में शिखरों पर फैला विगलित सोना
परी कुमारी का पुलकित लिबास में होना
x x x
ये गिरि के आषाढ़ मेघ हल्के पर मंथर
संध्या से ये दीर्घ-रमण, कुसुमों के सुअधर
किया तुम्हारा शृंगवात ने होगा सेवन
हे उद्गम तरंग-पुत्र, हे घन-घन गर्जन
माता का घर लखने जब तुम गिरि पर आए
हे गांगेय, नेत्र गंगा के तब भर।
हमें बता दो कैसा है वह चंचल सागर
हिलते रहते हैं प्रतिपल जिसके सहस्र कर।

पर्वतीय जनजीवन की विषमताओं से कवि जूझता रहा। पर्वतवासी होने के कारण उसे सदा पहाड़ ही पहाड़ दिखाई दिये। दुगर्म, बर्फ़ानी, उजाड़ और हिमानी पर्वत देखकर वह सदैव अचंभित रहा। पहाड़ी रास्तों पर चढ़ने और उतरने का क्रम वह सहता रहा। हिमशिखरों को देखता रहा तो उन्हें अपनाता रहा। पर्वतों में आने वाली ऋतुओं का परिवर्तन देखकर, पर्वत श्री देखकर कवि प्रमुदित होता रहा। बसंत, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर जैसी प्रमुख ऋतुओं के आगमन से प्रकृति में आते परिवर्तनों से वह खिल उठा---'नवनिदाघ में फूलों का नव-परिमल वर्षण।' साँझ होती है। सूरज ढलने लगता है। शिखरों पर अस्त होती किरणें-संध्या में शिखरों पर फैला विगलित सोना होने का आभास दिलाती हैं। नदीजल का सागर से मिलने के लिये प्रतिपल दौड़ना और अंततः सागर में विलीन होने का दृश्य कितना अद्भुत हो सकता है !

'तरंगिणी' लंबी कविता में नदी को माँ के रूप में मानता हुआ कवि कामना करता है--हे जननी, तुम्हें मेरी झुलसी हुई धरती को हरी-भरी करना ही है। यदि मेघ भी मुझे जल देने के लिये तैयार न हों, मुझ पर सदा वज्र गिरने के लिये तैयार रहे। तुम्हारा रस पीने के लिये मिलता रहे, तो मैं कभी नहीं मर सकूँगा। तुम्हें स्पर्श

करता हुआ मैं हरा-भरा रहूँगा और तब—

कूकेगी मेरी आशा बन तरु विहंगिनी, हे तरंगिणी
मेरे भाव फूल बन, भर देंगे हे तरंगिणी पुलिनों को,
मेरी सुरभि मधुर कर देगी सलिल कणों को
मेरा हृदय स्वच्छ समतल बन कर कर देगा
शिथिल तुम्हारी लहरों के चंचल चरणों को
मेरे नयन तुम्हें कर देंगे शोभा अपनी, हे तरंगिणी
आओ गिरि शिखरों पर स्वच्छ ध्वजा फहराती
गहन घाटियों में सवेग शुचि वस्त्र उड़ाती
आओ उन औषधियों का रस ले अंतर में
जिनसे मृत प्राणों में शक्ति नई फिर आती है
कर देती जो तरुण, शुष्क फूलों की अवनी।

'वनदेवी'—पर्वतीय जनजीवन में विशेषकर वनदेवी और वनदेवता की पूजा का विधान है। क्योकि वनों में विचरता पर्वतीय चरवाहा या कृषक अपनी शारीरिक एवं मानसिक सुरक्षा बनाये रखने के लिये अक्षत, चंदन, फूल, धूपदीप और मीठा पकवान अर्पित करता है। और यह माना जाता है कि वनदेवता प्रसन्न हो गये। वे सबकी सुरक्षा करेंगे। लोगों का जीवन पग-पग पर सुरक्षित रखेंगे और पर्यावरण की रक्षा करेंगे—

वन में बजते रहते नूपुर छाया में सुन पड़ते मृदु स्वर,
तरु से रह रह गिरते प्रसून, रह रह भर आता पिक का उर
बसती है इस वन में कोई, जिसकी सुषमा वन में छाई
मनमोहन रही जिसकी शोभा, पर पड़ती जो न दिखाई
जब गोशाला में सोती गाएँ, ग्वाले सोते घर के भीतर
तब कोई वन में सुन पड़ती गायों को पुकारती रुक-रुक कर
गाएँ स्थिर हो सुनने लगतीं, वनदेवी का वह कोमल स्वर।
रजनी का घन अन्धकार छाया रहता बाहर पृथ्वी पर
होता प्रभात जब वन-वन में, लतिका में तल पर तब मिलते
कुछ कुसुम पड़े, जो वृक्षों से होंगे रजनी में चुने गए।
कुछ लोग सोचते हैं तब यह—वनदेवी ने इन फूलों से
शृंगार किया होगा लतिका में तल पर, रजनीभर रह करके।

× × ×

दोपहरी देख पथिक वन में जब छाया करता सेवन
तंद्रा आकर धीरे-धीरे देती है उसके मूँद नयन
सहसा किसी की आहट सुनकर उसके हो जाते सजल नयन
निर्जन वन के उर में, किसके चरणों की सुनता वह गुंजन !

अधिकतर कुछ लोग इस विधान को मानते हैं। पर कुछ लोग इसे अंधविश्वास कह कर (इस विधान को) टाल देते हैं। लोकमान्य विधान ग्रामीणजनों की संस्कृति से जुड़ा विधान है। कष्टों, आपदाओं और विपदाओं से मुक्ति मिल पाना, जीवन में नई स्फूर्ति, उत्साह और उमंग, प्रेरणा की प्राप्ति, आंचलिक संस्कृति की सम्पन्नता का ही तो द्योतक है। साहित्य में लोक-संस्कृति की स्थापना करना और उनका महत्त्व अभिव्यंजित करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं वांछित है। प्रतीत होता है कि लोकमंगलकारी तत्त्वों के समावेश से ही सृजनात्मक साहित्य सम्पन्नता की ओर बढ़ता है। हिन्दी में रचनाकारों ने इस पक्ष पर कम ध्यान केन्द्रित किया है। पौराणिक आख्यानों पर आधारित काव्य, उपन्यास एवं नाटक तो रचे ही गए हैं। राम-सीता, कृष्ण-शिव, पार्वती-पांडव अथवा ऐतिहासिक चरित्रों पर जैसे सम्राट अशोक, अहिल्याबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, राजा हरिश्चन्द्र आदि विषय साहित्यकारों के लिये प्रमुख विषय रहे हैं। पर चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने अंचल विशेष के विषयों पर कविता रची है–

जाओ मेघों के भीतर गिरि के शिखरों पर
रंग-बिरंगे वस्त्र पहन, हाथों में धर कर
अक्षत-धूप-दीप, चंदन
जाओ हे गाते सब मधुर स्वरों में वंदन
उस सुर का जो करता सबका वन में रक्षण।

'वनदेवता' कविता की उक्त पंक्तियाँ पठनीय हैं।

हमारी वह आंचलिक संस्कृति जो लोक मंगलकारी सिद्ध हुई है, जो जनजीवन में जनप्रियता प्राप्त कर सकी/सकती है और आस्था एवं विश्वास पर दृढ़ रह सकती है।

वन में उस देवता की वन्दना करने के लिए कवि उत्प्रेरित करता है जो वहाँ के डरावने दृश्यों से सबकी रक्षा करता है। पर्वतीय जंगलों की सघनता, उनमें विचरते जंगली जानवर, अजगर, बिच्छू, बाघ, रीछ, शेर, हाथी, वहाँ की बीहड़ता, विशाल डरावने पाषाण-खण्ड, बर्फ़ीले पहाड़, टेढ़े-मेढ़े, छोटे-छोटे रास्ते किसके लिए जानलेवा ख़तरनाक नहीं हो सकते हैं ?

सामाजिक विकास की दृष्टि से जन-सुरक्षा पर भी चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की पैनी दृष्टि पड़ती रही और उन दृष्टिगत विषयों पर वे उल्लेखनीय कविताएँ रचते रहे।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने देहरादून के डी.ए.वी. कालेज में इण्टरमीडिएट की शिक्षा प्राप्त की। देहरादून की रमणीयता ने कवि को काव्य-रचना करने के लिए अनुप्रेरित किया और हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट कविता का जन्म हुआ जिसका शीर्षक है, 'देहरादून'—

हे शालमेखले, किस गिरि से तुम इतना रूप लिए उतरी
आँखों में आधा स्वर्ग खुला, अंगों में उन्मद सुधाभरी,
घाटी में यहाँ फैलता है लावण्य तुम्हारा,
तुम पर गिरि से टकराकर, मूर्छित होती कुहू ध्वनि धारा
यह कुंज निराला यहाँ फूल खिल पड़ते,
इन चपल अंगुलियों में रहस्य-इंगित के द्वारा
तुम प्यासी ऋषिपर्णा तट पर आमों की छाया प्रिय गहरी,
है दूर सहस्र धारा का जल, अब यहीं बिताओ दोपहरी।
x x x
अपने धानों के खेतों की पतली डालें
पककर झुकी हुई प्रसवोन्मुख पीली बालें
देख रही तुम हे, शशिमुखी, चुपचाप अकेली,
भीनी-भीनी महक रही पर्वत की ढालें
प्रमुदित होते हैं खग-नभ में
मुदिता होती नरमयि नगरी
तुम नयी फ़सल का अन्न काट
खलिहान भर रही सुंदरी।
x x x
आ गई चाय की अब ऋतु
फूटने लगी कोमल कोंपल,
कंडी लटका कर मस्तक से
तुम चली बीनने ये नवदल।
दिनभर तुम प्रशस्त बाग़ों में रही बिनती
क्षणभर छाया में सुस्ता श्रमवारि पोंछती।
x x x

हे पग-पग प्रिय, पद-पद नूतन,
हे चिर युवती अभिमान भरी
इस मुख शोभा पर भौंरे से मँडराते घन, हे रूप परी,
केश-केसरी वायु प्रेम से हिला रहा है
अपने यौवन के संदेश गिरि बहा रहा है
दिवस तुम्हें सघन, शाल कुंज में खोज रहे हैं
चाँद तुम्हें गिरि श्रृंगों पर रुक बुला रहा है।
तुम किन युद्धों की बात सोच पीड़ित,
गुररवों की छीनी श्री,
हे पग-पग प्रिय क्षण-क्षण नूतन,
हे चिर तरुणी अभिमान भरी।

उक्त कविता में स्वाभिमानी चिर युवती मस्तक से कंडी लटका कर चाय की पत्तियाँ बीनती हुई श्रमिक नारी का दैनिक जीवन चित्रित किया गया है। वह श्रमिक नारी कष्ट सहती हुई दिनभर देहरादून के चाय-बाग़ानों में चाय की पत्तियाँ बीनती रहती है। बस, थोड़ी देर छाया में सुस्ताती वह पसीना पोंछती हैं। देहरादून की असीम सुन्दरता पर कवि के निम्नलिखित उद्‌गार व्यक्त हुए हैं—'हे शाल वृक्षों की पंक्तियो इतनी सुन्दरता तुम किस पर्वत से लायी हो ? जो देखने पर आधा स्वर्ग और अंगों से उन्मादक अमृत प्रतीत होता है। समूची दून घाटी में तुम्हारा शारीरिक लावण्य फैलता है। प्रायः कोयल की सुरीली स्वर लहरी पर्वत से टकरा कर मूर्च्छित होकर घाटी में गिर जाती है। इस निराली दून घाटी में रहस्यात्मक फूल खिल पड़ते हैं।

हे शाल वृक्षों की पंक्ति; ऋषिपर्णा नदी (रिस्पना नदी) के तट पर होते हुए भी तुम प्यासी क्यों हो ? जहाँ आम के वृक्षों की गहरी छाया रहती है। अब तो यहीं बिताओ यह दोपहरी। क्योंकि सहस्रधारा का जल यहाँ से काफ़ी दूर है।

खेतों में कड़ी मेहनत करने के उपरान्त समय पर बारिश हो जाने पर धान के खेतों में पतली डालें पक कर झुकी हुई प्रसवोन्मुखी अनाज की पीली बालें दिखायी दे रही हैं। इससे दूनघाटी की लम्बी ढलाननुमा ज़मीन भीनी-भीनी सुगन्ध लिये महक रही है। आसमान में पक्षी भी प्रसन्न होते प्रतीत होते हैं। जनसमूहों से पूर्ण यह देहरादून नगरी भी प्रसन्न दिखायी देती है। क्योंकि हे सुन्दरी, तुम नयी फ़सल का अनाज बटोर कर अपना खलिहान भरती जा रही हो।

8

सांस्कृतिक अस्मिता एवं लोकरस के कवि

दरअसल साहित्य में कविकर्म का निर्वाह करना ही सांस्कृतिक जीवन है। चन्द्रकुँवर की काव्यवाणी हिमालय की सांस्कृतिक-वाणी के रूप में हिन्दी संसार में प्रवाहित होती रही है। हिमालय की हिमधवल चोटियों से पिघलती हुई प्रवहमान वह पर्वतों, सघन वनों, पाषाणों और चट्टानों को चीरती हुई, गुँजाती हुई गंगा-यमुना की संस्कृति की सबल धराओं की तरह बहकर प्रखरता से आगे बढ़ती हुई देशवासियों के लिए उपयोगी बनी रही। और सदैव बनी रहेगी। यह देशवासियों की क्षमता पर निर्भर करता है कि वे उसका सदुपयोग करना जानते हैं या नहीं।

कवि ने अपनी गुंजन कविता में इस संदर्भ में यों लिखा है–

दिशा दिशा में अब सौरभ के
धूमिल मेघ उठेंगे।
x x
होवेगी रवि के चुंबन से
अब सानंद हिमानी।
फूट उठेगी अब गिरि गिरि के
उर से उन्मद-वाणी

यह पवित्र, स्वच्छ एवं निष्कलंक वाणी गंगा-यमुना सी विहँसती, उछलती फेन उगलती, पत्थरों से टकरा कर श्वेत पुष्प खिलाती, कूल-किनारों से होती शीतल फुहारें बिखरेती हुई अंततः सागर-जल में समा जाती है। विश्वजनीन बन जाती है।

'हिमवंत' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

नीचे है गंगा
पर्वत के मस्तक पर हिमशीतल।
x x
हँसती है हिम के महलों के

पीछे से उठ शशिनी।
बैठे हैं गंगा के तट पर
शिला-वनों में बादल
उर में वज्र छिपाकर।
x x x
दो आनंदलोक के गिरि हैं
सदा जहाँ नयनों में
हँसता है हिम उज्ज्वल।

प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को निरखने और उन्हें काव्योपयोगी बनाने की कवि की अंतर्दृष्टि एवं अभिव्यक्ति की निसंकोच एवं निर्विकार स्तुति करने के लिये यह मन बार-बार उछलने लगता है। कुलाँचें भरने लगता है।

कवि की 'सामगान' कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में भारतीय समाज की एक सांस्कृतिक झलक स्पष्ट अभिव्यक्त हुई है—

आर्यावर्त पिता हैं मेरे, गंगा मेरी माता
यमुना मेरी बहिन पुण्य पावन-जल सुस्नाता।
पिता अन्न देते, माता हमको जल नहलाती
बहिन हाथ से हमको शीतल जल का पान कराती।
हम प्रभात होते ही माता के चरणों पर जाते
भक्तिभाव से नत होकर के उनको शीश नवाते।
x x x
हमें पिता के गुण का गौरव, माता की पवित्रता का
और बहिन के स्वर का, जिसमें गीता स्वर लहराता।
सभ्य पिता-माता के सुत बन, हम इस जग में आए
सफल हमारा जन्म राम की मातृभूमि में पाए।
कृष्णमोहिनी छाया हम को भी, वे ही कदंब देते
बुद्धदेव के प्रिय पीपल, हमको भी लखकर हिलते।

माता-पिता और बहन की तरह छाया एवं स्नेह प्रदाता हिमालय, गंगा और यमुना की जल-तरंगें जनजीवन को जीवंतता प्रदान करती हैं। अन्न और जलपान प्रदाता ये हमारे लिए वंदनीय हैं। पिता का गुण-गौरव, माँ की पवित्रता और बहन का पावन गीतास्वर, जो हमें कर्ममार्ग पर चलने का पाठ सिखाता है, साथ लेकर हम इस धरती पर अवतरित हुए हैं। श्रीराम की भूमि में जन्म पाकर हमारा जीवन

सफल हो गया है। कदम्ब वृक्ष की कृष्णमोहिनी छाँव और भगवान बुद्ध का प्रिय पीपलवृक्ष हमारे प्राणों में प्राण फूँक देता है। इसी प्रकार 'राईमासी' कविता में शिव-पार्वती की छवि की एक झलक पठनीय है–

मैंने देखा थे महादेव बैठे
हिमगिरि पर दूर्वा पर।
डमरू था मौन गढ़भूमि पर
चमक रहा उज्ज्वल त्रिशूल।
सहसा आई गिरिजा, बोलीं–
मैं लाई नाथ अमूल्य भेंट।
हँसकर देखे शंकर ने
वे राईमासी के दिव्यफूल।

भारतीय संस्कृति में शिव-पार्वती की महिमा भारतीय जनजीवन में सर्व मान्य है। नटराज शंकर नृत्य के जन्मदाता, डमरू द्वारा स्वरों का उदगम, गरल पीकर जीवित रहने वाले, हिमालय-पुत्री पार्वती के पति भोलेनाथ, हिमालय के शिखरों के वासी तपस्यारत महादेव को कवि ने हिमगिरि पर दूर्वादल पर बैठे देखा। त्रिशूल गढ़ा था और उस पर डमरू स्थिर एवं मौन था। सहसा कैलास में उगने वाले और खिलने वाले राईमासी पुष्पों को लेकर पार्वती शिव के पास आकर बोली–"हे नाथ, आपके लिए अमूल्य भेंट लाई हूँ। ये पुष्प ग्रहण करें।" शिव ने हँसते हुए पार्वती की ओर देखा और फिर उस अमूल्य भेंट राईमासी पुष्पों को भी देखा। राईमासी पुष्प का वर्णन उत्तराखण्ड के लोक गीतों में भी हुआ है। कवि की जन्मस्थली गढ़वाल में प्रचलित एक लोकगीत उदाहरण के लिए प्रस्तुत है–

कैलास में राईमासी का फूल है।
यह किस माह में खिलेगा ?
यह चैत्र माह में खिलेगा।
यह किस देवता को प्रिय है ?
यह शिवजी को प्रिय है।
यह किस देवी को प्रिय है ?
यह पार्वती को प्रिय है।
इसे तोड़कर कौन लाएगा ?
इसे तोड़ने कौन जाएगा ?
इसे लेने पार्वती जी स्वयं जाएँगी
वह इसे शिवजी को भेंट चढ़ायेंगी।

इससे स्पष्ट है कि चन्द्रकुँवर वर्त्वाल जनसंस्कृति में प्रचलित लोकधर्मी परंपरा का काव्य में प्रयोग-उपयोग करते थे। यह मनोवृत्ति सांस्कृतिक अस्मिता को उजागर करने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

कवि की अनेक कविताएँ हैं जिनमें हिमालय, गिरिशिखर, गंगा, यमुना, अलकनंदा, मंदाकिनी, शिव-पार्वती, वनदेवता, वनदेवी, देवदारु-वन, चीड़ वृक्ष, राईमासी पुष्प आदि सांस्कृतिक पहचान के रूप में उभरकर अभिव्यंजित हुए हैं। अपनी संस्कृति-संपदा के प्रति कवि का तीव्र लगाव रहा। कोमल संगीतमय माधुर्यपूर्ण तत्त्वों को वे वाणी की सुंदरता मानते थे। हृदय-प्रतिमा कविता में उन्होंने भारत की प्रथम सभ्यता-रश्मि का उल्लेख यों किया है—

प्रथम मभ्यता-रश्मि जगत में
छिटकावे माँ नवलप्रकाश
मेरे भोले स्वर्णिम-युग में
आवे नभ में सूर्यप्रकाश।
कोमलता, संगीत, मधुरता का
हो फिर वाणी में वास।

विश्व में सभ्यता का प्रकाश प्रसारित करनेवाला सर्वप्रथम देश भारत को माना जाता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों द्वारा हमारे ऋषिमुनियों ने आध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, साहित्य-संगीत और कलाजगत का विस्तृत एवं गंभीर-ज्ञान प्रसारित किया। इसीलिए भारत को विश्व में सभ्यता का सर्वप्रथम प्रसारक-गुरु माना गया है। कवि की पृथ्वी और पृथ्वीवासियों के प्रति गहरी आस्था बनी थी। वीरभोग्या वसुंधरा की भावना के वे अनुयायी/समर्थक रहे। 'पृथ्वी' कविता में उन्होंने पृथ्वी को यशस्वियों की पृथ्वी माना है, कायरों की नहीं—

यह यशस्वियों की पृथ्वी है, यह वीरों की
कर्मभूमि है, इन दुर्गम शिखरों के ऊपर
कौन वास कर सकता है, जिसने अपने को
हो न देवता बना लिया ? बज्रों से हिलते...

यह सत्य है कि हिमालय के ऊँचे दुर्गम शिखरों पर वही वास कर सकता है जो देवगुणों से पूर्ण हो। बज्र की भाँति कठोर हो। इन्द्र, शिव, पार्वती, विष्णु, दुर्गा, लक्ष्मी आदि की भाँति देवता हो।

कवि की 'शंकुतला' कविता मालिनी नदी के किनारे पर वसे कण्वाश्रम की स्मृति को झकझोरती है। जहाँ पर कण्वाश्रम था और वहीं पर शकुंतला का

पालन-पोषण हुआ था। अब वह स्थान उपेक्षित बीहड़-सा है–

ये शंकुतला के दारुण दुख से
दीन खड़े वन के तरुवर
सूखी बाँहों वाली छाया थी
गिरी हुई उनके पद पर।

x x x

काश्यप क्या छोड़ गए आश्रम
मुझको संदेह हुआ सहसा
जो वेदमुखी आश्रम लगता
था एक उपेक्षित बीहड़-सा।

x x x

क्या तुमने भी सुनली, दारुण वह
शकुंतला की त्याग कथा।
जो असमय ही तुम जाती हो
होकर सहसा ही वज्रहता।

प्रस्तुत कविता की ध्वनि से यह स्पष्ट व्यंजित होता है कि हमारे सांस्कृतिक स्थल आज कितने बीहड़ और उजाड़ पड़े हैं। देश के उन सांस्कृतिक महापुरुषों की स्मृति में कोई स्मारक नहीं, कोई मेलोत्सव आयोजित नहीं होते। ऋषि कण्व, शकुंतला और राजा दुष्यंत की सांस्कृतिक-गाथा से हम ख़ूब परिचित हैं। महाकवि कालिदास ने उक्त सांस्कृतिक-गाथा पर आधारित संस्कृत भाषा में अभिज्ञान शांकुतलम् नाटक लिखा। इस नाट्यकृति में प्रकृति, पर्यावरण-संरक्षण और मर्मांतक घटनाओं के चित्रण के लिए कालिदास को लोकप्रियता मिली। यह नाटक कई भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनूदित हुआ। इससे भारतीय वाङ्मय की ख्याति का प्रसार हुआ।

नाट्यकला एवं कथानक की सृष्टि करने में नाटककार की कला की भूरि भूरि प्रशंसा हुई।

भारतीय संस्कृति में सूर्य को देवता माना गया है। सूर्योदय होने पर सुसंस्कृत-जन सूर्य को जल चढ़ाते हैं। विनती करते हैं। बर्त्वाल ने अपनी अनेक कविताओं में सूर्य और चंद्रमा का काव्यात्मक-लेखन द्वारा स्मरण किया है। 'रवि' शीर्षक कविता उद्धृत की जा रही है–

ओ रवि, जीवित करो मुझे, मेरे मस्तक को
भरो तरंगों से, आलोक और गीतों को...
x x x
ओ रवि मुझको अपनी किरणों में
जागृति दो शोभा दो, और शक्ति दो
मुझे जगाओ जीवन के कर्तव्यक्षेत्र में।

कवि रवि से जागृति, शक्ति, शोभा और कर्मशीलता प्राप्त करने के लिए विनती करता है—वह अपनी किरणों से उन्हें जागृत कर दे।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल जीवन के अन्तिम वर्षों में पारिवारिक दुर्घटनाओं एवं अपनी तपेदिक की बीमारी से रुग्ण रहने के कारण विपन्नावस्था में रहे थे। उन्हें धनलक्ष्मी की कमी खटकने लगी थी। श्रीसूक्त कविता में कवि ने लक्ष्मी के सांस्कृतिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए विनती की है—

माँ कमले, मेरी अंजलि रत्नों से भर दो
मुझ दरिद्र को तुम धन से परिपूरित कर दो।
x x x
तुम हो सकल सृष्टि के भव्यगुणों की रानी
तुम हो दृष्टि अंध की, तुम हो कुरूप की शोभा
तुम हो मूक कंठ की मुखर गिरा कल्याणी।
जिसपर कृपा तुम्हारी उसको रोक नहीं है
तुम प्रसन्न हो तो दुख में भी शोक नहीं है।
x x x
मेरे मस्तक पर माँ वरदहस्त निज धर दो
माँ कमले, मेरी अंजलि रत्नों से भर दो।

कवि धनहीन रहने पर अपने प्रति लोगों की तिरस्कार भावना महसूस करने लगे थे। अपना घर अस्थिर लगता था उन्हें। वे लक्ष्मी की कृपा के आकांक्षी बन गए थे। कवि ने उक्त कविता में ये विचार भी व्यक्त किए हैं कि जिस दिन लक्ष्मी की कृपा होगी उसी दिन लक्ष्मी की वंदना करेंगे, अभिनंदन करेंगे। आँसुओं से चरण धो डालेंगे। अपने लहू का चंदन टीका लगाएँगे। कुल की शोभा बनकर पुनः कुल में आकर कुल को सम्पन्न करने की कवि लक्ष्मी से विनती करता है। कवि कहता है कि हे लक्ष्मी माँ, तुम दृढ़ शरीर, दृढ़ मन वालों को ही मिलती हो। मैं तो क्षीणकाय

हूँ। तुम मुझे कैसे मिलोगी। तुम मेरे शरीर को सवल बना दो। मैं कृशतन तुम्हारी कृपा होने की बाट जोह रहा हूँ।

यह अत्यंत दुःखद है कि साहित्यकारों को आर्थिक तंगी में जीवनयापन करना पड़ता है। विश्व में अधिकतर साहित्यकार ग़रीबी का जीवन भोगते हैं पर रचते हैं उच्चकोटि का साहित्य। हिन्दी-संसार में प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध, धूमिल, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल, राजकमल चौधरी आदि अनेक साहित्यकार आर्थिक तंगी के कारण दुखी रहे हैं। आज भी हमारे देश में साहित्यकार की दुर्दशा ही होती है, जबकि वह अपने साहित्य के बल पर विश्व में देश की गरिमा को उजागर करता है। वह अपने देश का क़द ऊँचा उठाता है। वह विश्व के सम्मुख भारतीय अस्मिता एवं लोकरस की पहचान कराता है।

9

रचनाएँ

सहजता के विपरीत कल्पनात्मक चित्रण करना असली लेखकीय-कर्म नहीं माना जा सकता। लेखक की क़लम जन-जीवन से जुड़ी होती है। वह अपने आस-पास की सुंदर-असुंदर वस्तुओं, महत्त्वपूर्ण संघटनाओं एवं परिदृश्यों अथवा आम आदमी के जीवन जीने के तौर-तरीक़ों को चित्रित करके पाठकों तक अपने समाज की सही तस्वीर पहुँचाने का कर्तव्य निभाता है। जीवन में भोगा हुआ यथार्थ और खट्टे-मीठे अनुभव तो लेखक के लिए रचना-प्रेरणा की भूमिका अदा करते ही हैं।

प्रेमचंद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, यशपाल, प्रसाद, कौशिक, भगवती चरण वर्मा, रेणु और निराला आदि अनेक हिन्दी गद्यकारों ने जीवंत गद्यलेखन के क्षेत्र में जो प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त की है उसका आधार ही भारतीय समाज है।

स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में जिन लेखकों ने हिन्दी में गद्यलेखन को कुछ सहज एवं विशिष्ट ढंग से स्थापित करने के लिए प्रयत्न किया उनमें निश्चय ही चन्द्रकुँवर बर्त्वाल को रेखांकित किया जाएगा। यद्यपि बर्त्वाल ने गद्य अधिक नहीं लिखा है पर जो लिखा—जितना लिखा वह हिन्दी-गद्य-लेखन में उन्हें स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

बर्त्वाल के अब तक प्रकाशित गद्य साहित्य में कहानी संग्रह *नागिनी* और प्रहसन संग्रह *नाट्यनंदिनी* ही उपलब्ध हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके कतिपय निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण आदि पुस्तकाकार रूप में उपलब्ध नहीं हैं। 'पौड़ी की रामलीला', 'डोटियाल', 'सौगंध', 'बदली का दिन' और 'प्रेम' आदि उनकी गद्य-रचनाएँ उस युग में चर्चित हुई थीं। परंतु कविता-लेखन की तुलना में बर्त्वाल बहुत कम गद्य लिख पाए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मात्र अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु में रचा गया उनका साहित्य कम नहीं है। पर्याप्त है।

क्या कहानी, क्या प्रहसन, क्या रेखाचित्र-संस्मरण—उनका समूचा गद्य

साहित्य अपनी माटी की महक या विद्रूपताओं से सराबोर है। समाज में रहकर असामाजिकता का व्यवहार करने वालों पर कटाक्ष करने से वे चूके नहीं। पौड़ी, ज़िला पौड़ी-गढ़वाल का मुख्यालय है। इस नगरी में एक युग में म्यसमोर हाई स्कूल की स्थापना हुई थी। म्यसमोर हाईस्कूल में पढ़ने के लिए पर्वतीय विद्यार्थी दूर-दराज के क्षेत्रों से आते थे। बर्त्वाल की पढ़ाई भी इसी हाईस्कूल में हुई। वे पौड़ी में रहे। पौड़ी में प्रतिवर्ष रामलीला का आयोजन होता था। बर्त्वाल ने उस रामलीला का मंचन देखा। उसी रामलीला-मंचन का उन्होंने दिलचस्प चित्रण किया है। यह कहानी राष्ट्रीय-संस्कृति-चेतना का प्रसार करती है। कतिपय सामाजिक-व्यवस्थाओं पर चोट भी करती है। इसी प्रकार नेपाल से भारत आनेवाले नेपाली प्रवासी भाइयों की दर्दभरी ज़िंदगी के कुछ पहलुओं का चित्रण उन्होंने अपनी 'डोटियाल' कहानी में किया है। पुराने ज़माने में नेपाल-नरेश के आदेश पर ओद नामक वन्यपशु की खाल प्राप्त करने के लिए डोटियाल (प्रवासी नेपाली) गढ़वाल के कई क्षेत्रों में भटकते रहते थे। ऐसी मर्मस्पर्शी कहानियाँ लिखकर बर्त्वाल ने मानवता पर हो रहे अत्याचारों और निर्मम-व्यवहार का दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है।

'सौगंध' व्यंग्य रचना में बिगड़ैल एवं दलित मानसिकता का चित्रण हुआ है। 'प्रेम' और 'बदली का दिन' रचनाओं में साहित्यिक गहराई का अच्छा चित्रण हुआ है। नितांत नये और अछूते कथातत्त्वों से गुंफित उनके कथानकों में पर्वतीय जन-जीवन के संदर्भों का बख़ूबी चित्रण हुआ है। उनके प्रहसनों के विषय भी पर्वतीय जीवन की झलक प्रस्तुत करने पर केंद्रित रहे हैं।

प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के कथाकारों के लिए बर्त्वाल के गद्यलेखन की प्रासंगिक एवं सार्थक पहचान हिन्दी के अनेक लेखकों के लिए प्रेरक सिद्ध हुई है। पहाड़ी जीवन भोगे हुए श्री हरिदत्त भट्ट शैलेश, पहाड़ी, शिवानी, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, विद्यासागर नौटियाल, गंगाप्रसाद विमल, बटरोही, हिमांशु जोशी, पंकज बिष्ट, प्रदीप पंत, वल्लभ डोभाल, मृणाल पांडे और राधाकृष्ण कुकेरती आदि कई कथाकारों ने चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के गद्यलेखन से प्रेरणा ली है एवं मार्ग दर्शन प्राप्त किया है। फणीश्वरनाथ रेणु के गद्य साहित्य की भावभूमि बर्त्वाल से प्रभावित रही है। यों कहा जा सकता है कि हिन्दी में आंचलिक-कथा-लेखन का आरंभ करने वाले लेखकों में बर्त्वाल पहली पंक्ति में गिने जा सकते हैं।

बर्त्वाल के अप्रकाशित और बिखरे हुए गद्य साहित्य को संकलित करने तथा उसे प्रकाशित करने की आज ज़रूरत है। उदाहरणार्थ बर्त्वाल के गद्यलेखन के कुछ नमूने परिशिष्ट 'क' (द्रष्टव्य) में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

10

हिन्दी आलोचना और बर्त्वाल की कविताएँ

आधुनिक हिन्दी आलोचना-संसार में समीक्षकों ने चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य पर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ एवं टिप्पणियाँ व्यक्त की हैं। जैसे हिन्दी के प्रखर आलोचक डॉ. नामवर सिंह का यह कथन—"35-40 के दौर में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने हिन्दी में अनेक सानेट लिखे हैं। वे हिन्दी में सानेट लेखन की परम्परा को स्थापित करने वाले कवियों में प्रमुख हैं। त्रिलोचन ने तो कुछ वर्ष पूर्व ही हिन्दी में सानेट लेखन आरम्भ किया है।"

वस्तुतः चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने यह स्वीकार नहीं किया है कि उन्होंने हिन्दी में सानेट लिखें है। बल्कि उन्होंने यह स्पष्ट कहा है कि वे हिन्दी को ऐसा काव्य समर्पित करने के लिये दृढ़ संकल्प हैं जो भारतीय हो और भारत की धरती का हो।

सानेट लेखन पर चर्चा करने की अपेक्षा उनकी अधिसंख्य कविताओं के गहन और विस्तृत आयामों पर विचार करना अधिक प्रासंगिक होता। कवि के काव्य के उन प्रशसंकों के कथनों से भी सहमत नहीं हुआ जा सकता जिन्होंने कवि की काव्यात्मा को गहराई से समझने का प्रयत्न नहीं किया। मात्र प्रशंसा करने से हिन्दी कविता-संसार का अध्ययन एवं चिन्तन की भूमिका की गहराई की अवहेलना ही माना जायेगा। उदाहरण स्वरूप डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का यह कथन—"चन्द्रकुँवर बर्त्वाल कब हिन्दी संसार में आये और कब चले गये, इसका किसी को पता न लगा। पर उनके रूप में हिन्दी संसार ने अपना सबसे बड़ा गीतिकाव्य रचयिता पाया और खो दिया। वस्तुतः वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दी काव्य समीक्षक नहीं थे। वे इतिहासकार एवं पुरातत्वविद के रूप में विख्यात रहे हैं। हाँ अपने समय में कवियों और लेखकों की रचनाओं पर टिप्पणियाँ लिख देते थे।

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ हिन्दी जगत में खूब पढ़ी जाती रही हैं, *विशाल भारत* तथा *सरस्वती* जैसी उच्चकोटि की पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। वे रचनाकार के रूप में स्वाधीनता-संग्राम की अवधि में सभी हिन्दी

साहित्यकारों के सम्पर्क में रहे। कवि का शैक्षिक जीवन इलाहाबाद तथा लखनऊ विश्वविद्यालय जैसी उच्चकोटि की शिक्षण संस्थाओं में सम्पन्न हुआ। इलाहाबाद और लखनऊ उन वर्षों में साहित्यकारों के केन्द्र थे। महादेवी, निराला, पंत, रामकुमार वर्मा, अज्ञेय, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय और राहुल सांकृत्यायन जैसी हिन्दी की विभूतियों के साहित्यिक सम्पर्क में कवि रहे हैं।

डॉ. अग्रवाल का यह कथन भी भ्रमित करने वाला है कि हिन्दी ने सबसे बड़े गीतिकाव्य रचयिता को पाया और खो दिया। कवि या लेखक खोये नहीं जाते बल्कि वे तो अमर हो जाते हैं। चन्द्रकुँवर को हिन्दी ने खोया नहीं बल्कि हिन्दी को चन्द्रकुँवर ने गौरवान्वित किया है। मात्र एक उच्चकोटि की कहानी 'उसने कहा था' के बल पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी के अमर कहानीकार बने। एक दूसरे समीक्षक डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है–

"चन्द्रकुँवर बर्त्वाल यदि जीवित रहते तो साहित्य की आधुनिक प्रगति में विशेष योग देते। वैसे उन्होंने जो कुछ लिखा वही उन्हें आधुनिक कवियों में श्रेष्ठ स्थान दिलाने में यथेष्ट है...उनकी *मेघनंदिनी* शीर्षक रचना वास्तव में एक अमर सन्देश लेकर हिन्दी पाठकों के सामने आयी है।" डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल की तरह ही डा. वार्ष्णेव से भी कुछ इस प्रकार कहने की भूल हो गयी। शारीरिक रूप में रुग्ण रहते हुए भी कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अपने समय में हिन्दी साहित्य-संसार में जनप्रियता प्राप्त कर चुके थे। क्योंकि उनकी घराट, यम, हिमालय, काफल पाक्कू, देहरादून, नवयुग, स्वर्णिम, प्रभात, यौवन के आँसू आदि अनेक रचनाएँ पत्रिकाओं, संकलनों एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुकी थीं। उनकी अब तक उपलब्ध लगभग एक हज़ार प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाएँ उन्हें हिन्दी में तो प्रतिष्ठित करती ही हैं। भारतीय साहित्य जगत में भी प्रतिष्ठित करती हैं। डॉ. वार्ष्णेय का ऐसा अभिमत इस दृष्टि से सार्थक नहीं प्रतीत होता है।

इसी प्रकार *सरस्वती* (जनवरी 1948) में श्री उमेशचंद्र मिश्र की टिप्पणी प्रकाशित हुई। श्री मिश्र ने लिखा–"चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अब इस लोक में नहीं रहे। बर्त्वाल जी की प्रतिभा का ठीक-ठीक अंकन तक अभी हिन्दी जगत नहीं कर पाया है, पर इतना कहा जा सकता है कि ऋग्वेद में सजीव प्रकृति-वर्णन का जो रूप उन्होंने अपनी रचनाओं में उपस्थित किया है वह अन्यत्र देखने में नहीं मिलता। इस विकासोन्मुख सच्चे कवि का हमारे बीच से उठ जाना सचमुच हमारे और हिन्दी के दुर्भाग्य का सूचक है।"

श्री मिश्र के कथन के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि साहित्यकारों की

रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन की (ठीक-ठीक) प्रक्रिया निरन्तर शोधपूर्ण ढंग से होती रहती है। अनेक विद्वान समीक्षक साहित्य संसार में अवतरित होते हैं। और श्रेष्ठ साहित्य का प्रासंगिक मूल्याकंन करते हैं। बर्त्वाल के काव्य का मूल्याकंन होता रहा है और होता रहेगा। बर्त्वाल के शब्दों में...

नदी चली जाएगी, वह न कभी ठहरेगी।

श्री मिश्र 'विकासोन्मुख कवि' कहकर कवि के अवदान का मूल्य-महत्त्च समझने में चूक गये। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल हिन्दी में विकसित कविता-धारा के प्रतिष्ठित कवि जाने-माने जाते हैं। *विराट-हृदय* नामक पुस्तक में श्री शम्भु प्रसाद का यह कथन कविता में निहित सामाजिक मूल्यों में अन्वेषी के रूप में उपयुक्त प्रतीत होता है "करुणा और सुंदरता, माधुर्य और ओज, त्याग और संयम, नियम और स्वच्छंदता का पुंजीभूत प्रवाह चन्द्रकुँवर और निराला का साहित्य है।..."

प्रसाद, निराला, और चन्द्रकुँवर ये तीन हिन्दी में आधुनिक युग के विराट कवि हैं। पर श्री शम्भु प्रसाद के कथन में यह भी जोड़ देना वांछित होगा कि प्रकृति और जनजीवन का सच्चा काव्यात्मक चित्रण बर्त्वाल की कविता का प्राण है। आधुनिक हिन्दी-कविता के विराट कवियों में क्रमशः जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, चन्द्रकुँवर बर्त्वाल श्रेष्ठ काव्य के रचनाकार हैं। समीक्षकों में बर्त्वाल की काव्यभूमि की प्रासंगिकता और सार्थकता पर जिन्होंने कहीं-कहीं गम्भीरतापूर्वक लिखा है उनमें उल्लेखनीय हैं—डॉ. नामवर सिंह, डॉ. केदारनाथ सिंह, डॉ. उमाशंकर सतीश, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, प्रयाग शुक्ल, राजेश जोशी और बटरोही। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी दोनों पुस्तकें—*इतिहास और आलोचना* तथा *छायावाद* में बर्त्वाल के काव्यावदान की चर्चा की है। यह उल्लेखनीय है कि एक अच्छे समीक्षक ने एक अच्छे कवि के काव्य की अच्छी चर्चा की। चर्चा विस्तृत होनी चाहिए थी। पर इधर एक संगोष्ठी में डॉ. नामवर सिंह ने बर्त्वाल के विषय में कुछ नयी बातें कही हैं जैसे चन्द्रकुँवर सम्भावनाओं के कवि नहीं बल्कि उपलब्धियों के कवि हैं। कवि की अपनी निश्चित उपलब्धियाँ हैं। अगर उनकी समूची कविताएँ प्रकाश में आएँ तो वे समकालीन कविता और समकालीन भारतीय परिदृश्य का भी बहुत भला करेंगी। हिन्दी में यों भी कुछ ऐसा माहौल बना हुआ है कि समीक्षक बार-बार पिछले दस वर्षों में प्रकाशित पुस्तकों की ही चर्चा करते रहते हैं। वह भी आधी अधूरी चर्चा होती है। पूर्ववर्ती कवियों के काव्य का आकलन का काम कम हो गया है। नतीजा यह हुआ है कि कभी-कभी समकालीन कविता की भी चर्चा नहीं हो पाती। चन्द्रकुँवर

बर्त्वाल जैसे कवियों को तो निश्चय ही ढूँढ़-ढूँढ़ कर पढ़ने की ज़रूरत है। उस पर निरन्तर चर्चा करने की भी परम्परा डाली जानी चाहिए। बर्त्वाल की कविता का एक स्वर करारे व्यंग्य का भी रहा है और आवेग का भी। सन् 1940 के आस-पास वह चींटी, एक दोस्त, गिलहरी, पूजा, रामनाम की गोलियाँ जैसी कविताएँ लिख रहे थे, जो आज के मुहावरे के निकट पड़ती हैं। डॉ. नामवर सिंह ने आगे स्पष्ट किया कि हिन्दी कविता में 35-40 के दौर में लिखी गई उनकी कविताएँ सीधी-सादी होते हुये भी गहरे व्यंग्य की दृष्टि से उस समय जितनी अनूठी थीं उतनी ही आज हैं। यह कहना अत्यन्त संगत होगा कि अट्ठाईस साल की उम्र में ही निधन होने पर भी वे सम्भावना के नहीं बल्कि उपलब्धि के कवि हैं।

कठिन सूर्य की किरणों से पीड़ित हो, अहरह
बाँसों के नीचे गुस्सावर शेर गरजते हैं
और कई शालों के काले तने बाँधकर
अपने दृढ़ शरीर नीचे लटका हवा में
जीभें खोल हाँफते रहते साँप रात दिन।

भावर वन में गुस्सावर शेर गरजते हैं, और जीभें खोल हाँफते रहते साँप रात दिन-जैसी काव्य पंक्तियाँ वर चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताओं में हिमालय की उदारता और गरिमा ही नहीं, वहाँ की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी भी है। हिन्दी में उन्होंने नये ढंग के गीत लिखे, जिसमें हास्य-व्यंग्य का पुट है। उनके गीतों में तन्मयता और मिठास के साथ-साथ कड़वाहट भी है। वे मृत्यु से आँख मिलाकर देखने वाले कवि हैं। उसी गोष्ठी में बर्त्वाल की कविता पर चर्चा करते हुये डॉ. केदारनाथ सिंह ने इस बात की ठीक याद दिलाई कि दरअसल चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के अन्दर कई कवि विद्यमान हैं। यानी उनकी कविता के कई रूप हैं। एक रूप तो गीतिपरक कविताओं के कोमल स्वर वाला है। दूसरा वह रूप है, जो यथार्थ की सख़्त ज़मीन पर खड़ा हुआ है। तीसरा रूप वह है, जिसमें वह शब्दों और वस्तुओं के साथ तरह-तरह के प्रयोग करते हैं। चौथा रूप वह है, जिसमें वह यथार्थ की ऐसी तहों की ओर हमें ले जाते हैं जो साधारणतया आँख की ओट में रहती हैं—बाँस के वृक्ष के नीचे जैसे कि घने अँधेरे की चर्चा वे अपनी इस कविता में करते हैं—

बाँसों और घने शालों ने आसमान में
उलझ, जमा कर दी अपने नीचे पृथ्वी पर
ऐसी रात न जिसमें तारे कहीं चमकते।

युग-युग से उठ, सड़े पत्तों के नीचे से उठ
चलती हवा मच्छरों से अत्यंत घनी हो
घनी छाँह के नीचे दलदल बनते पोखर
जहाँ मच्छरों की असंख्य सेनाएँ पलतीं।

जहाँ चाँद और तारों की रोशनी भी नहीं पहुँच पाती, और जहाँ नाग विचरते हैं। दरअसल वे प्रकृति और यथार्थ के ऐसे ठिकानों तक ही नहीं ले गये जहाँ कविता इस तरह से बदली गई ही नहीं थी, बल्कि वह मनुष्य-मन की भी अनदेखी गहराइयों की ओर ले गई। अलग-अलग समय पर लिखी गई उनकी कविताओं में मृत्युवोध भी है, उन्हें तपेदिक रोग था। और वे जानते थे कि वे अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह पायेंगे। लेकिन यह बोध भी रुग्ण नहीं है। उससे जूझने की सामर्थ्य उनके मस्तिष्क और उनकी कविताओं में थी। यह सामर्थ्य उनमें कविता-मात्र पर भरोसा रखने के कारण भी पैदा हुई थी। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है–"हो सकता है अकाल मृत्यु मेरी कामनाओं को कुचल दे। हो सकता है जब सिद्धि मुझे मिले उस समय उपभोग करने की सामर्थ्य मेरे शरीर में न हो। फिर भी मुझे इस बात का सन्तोष रहेगा कि जोवन के प्रभात काल में जिस देवी के चरणों पर मैंने अपना सिर रखा था। उसकी मैंने सदा पूजा की। उसको मैंने सदा प्यार किया। मुझे इस बात का दुःख नहीं है कि प्रसिद्ध उपासकों में मेरी गिनती नहीं हुई, क्योंकि मुझे समय नहीं मिला और प्रेम तो उसी का नाम है जो असह्य कष्ट सहने पर भी अपने स्नेहपात्र को धन्यवाद ही दे।"

कविता-कर्म पर ऐसा भरोसा हिन्दी के कई अन्य कवियों में न रहा हो सो बात नहीं। लेकिन चन्द्रकुँवर बर्त्वाल तो हर तरह से कविता के लिए समर्पित थे, उनके मित्र श्री शम्भुप्रसाद ने यह उचित ही लिखा है कि करुणा प्रेरित सौन्दर्य से उनकी कविताएँ तथा जीवन की भावनाएँ सराबोर हैं। लेकिन यह करुणा-प्रेरित सौन्दर्य भी दरअसल उन्हें कविता से ही मिला था। वह भले ही प्रकृति के कवि रहे हों पर उनकी रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि प्रकृति का सौन्दर्य भी वे शब्दों और कविताओं के सौन्दर्य के माध्यम से ही देख पाते थे। यानी उनका वह सौन्दर्य बोध पहले स्वयं कविता में स्थित था बाद में प्रकृति में। संभवतः इसी कारण वे निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख सके–

जिन पर मेघों के नयन गिरे
वे सबके सब हो गए हरे।

बर्त्वाल की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में हम यह भी बार-बार देखते हैं कि

उनमें प्रकृति के बिंब कुछ इस तरह आते हैं कि वे सीधे ही मनुष्य जीवन के कई प्रकार के राग-विराग, सुख-दुख और जटिलताओं को व्यक्त करने लगते हैं। वे एक साथ ही बहुत कुछ झलकाते हैं। श्री प्रयाग शुक्ल ने बर्त्वाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है –"चन्द्रकुँवर बर्त्वाल हिन्दी के विस्मृत कवि भले न हों, लेकिन ऐसे कवि ज़रूर हैं जिनकी सतत् याद नहीं की जाती है। जबकि वे सतत याद के अधिकारी हैं। अपने अट्ठाईस वर्षों के जीवन में उन्होंने लगभग एक हज़ार कविताएँ लिखीं। गद्य भी लिखा और वे हर तरह से प्रयोगशील भी रहे। उनकी रचनाओं में ऐसा बहुत कुछ है जो न केवल आज के लिए प्रासंगिक है बल्कि जिससे हिन्दी कविता के अन्यतम मुहावरे का भी पता चलता है। उनका ज़्यादातर साहित्य उनके जीवन काल में पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ था। कुछ पुस्तकें उनके निधन के बाद छपी हैं। ज़ाहिर है कि उनका बहुत-सा साहित्य अभी भी अप्रकाशित है–असंकलित है और जो कभी प्रकाशित भी हुआ था वह पुनर्मुद्रण की माँग करता है। कुछ वर्ष पहले प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक डॉ. उमाशंकर सतीश के संपादन में उनकी कविताओं का संकलन प्रकाशित हुआ था और इसे प्रकाशित करने में श्रीपतरायजी ने विशेष दिलचस्पी ली थी। पर उस संकलन की जैसी चर्चा होनी चाहिए थी, हुई नहीं।...बर्त्वाल का रचनाकाल छायावाद, स्वच्छंदतावाद, और प्रगतिवाद की धाराओं के समय का है। पर चन्द्रकुँवर किसी धारा में नहीं बहे। शुरुआत उन्होंने नये गीतों से की थी। उनके गीत भी नरेन्द्र शर्मा और बच्चन के गीतों से भिन्न हैं। बहुत कम उम्र में लिखी हुई उनकी कृति जिसे 'नंदिनी' नाम दिया गया जो दरअसल एक गीतिकथा है, इस बात को प्रमाणित करती है कि उनका स्वर कितना अलग था–

मेरे काँटे मिल न सकेंगे क्या कुसुमों से
मेरी छाँहें मिल न सकेंगी हरित द्रुमों से।
मिल न सकेगा क्या शुचि दीपों से तम मेरा
मेरी रजनी का ही होगा क्या न सवेरा
मिथ्या होंगे सभी स्वप्न क्या इन नयनों के
मेरे काँटे मिल न सकेंगे क्या कुसुमों से !

एक कारण शायद यह भी है कि किसी वाद से बँधे न रहने के कारण उनकी चर्चा बहुत नहीं हुई क्योंकि वाद और प्रवृत्तियों से जुड़े हुए लेखकों की चर्चा हिन्दी में कुछ ज़्यादा आसानी से होती है।" श्री प्रयाग शुक्ल की विस्तृत टिप्पणी से सहमत होते हुए भी यह नहीं माना जा सकता है कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल अचर्चित कवि रहे। रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित काव्य संकलन से लेकर महादेवी वर्मा, अज्ञेय, नरेश

मेहता आदि द्वारा कई संपादित काव्य संकलनों में कवि की कविताएँ संकलित की जाती रही हैं। उनके काव्य की चर्चाएँ होती हैं। पृथक से कोई समीक्षा ग्रंथ भले ही न लिखा गया हो। फिर भी उनके काव्य पर शोध ग्रंथ लिखने वालों की कमी न रही। श्री राजेश जोशी ने *साक्षात्कार* के अंक में बर्त्वाल की कविताओं पर कुछ सार्थक एवं उल्लेखनीय टिप्पणी की है। श्री जोशी ने लिखा है कि "बर्त्वाल की कविताएँ पढ़कर एक प्रश्न अक्सर उनके बाद लिखी कविताओं के संदर्भ में मेरे मन में उपजता रहा है कि वे कौन-से कारण हैं कि उन कविताओं में प्रकृति का वर्णन भी अपने परिवेश से, भारतीय ग्रामीण परिवेश से ऐसा जुड़ा हुआ दिखता है कि वह कविता हमें बेहद अपनी कविता लगती है। लेकिन हिन्दी में बाद की कविता में प्रकृति-वर्णन के उजाले और बेहद टटके बिंवों के बावजूद हमारे लिए उतना अपना नहीं होता ? बर्त्वाल की कविता में अपनी भारतीयता उसके रेश-रेशे में गुँथी-बुनी भारतीयता है। इसके लिए उन्हें स्थूल शब्द चित्रों या बिंबों की आवश्यकता नहीं होती है।" उनका यह कथन भी तर्कसंगत है "कि बर्त्वाल हिमालय के गायक थे। उनकी कविता पढ़ते हुए विश्वप्रसिद्ध चित्रकार रोरिक के चित्रों की बरबस याद आती है। हिमालय की छटा का ऐसा सुंदर वर्णन शायद ही किसी हिन्दी कवि में हो। प्रकृति की विविधता और विराट सौन्दर्य उनकी कविता का प्राण है। लेकिन छायावादी जटिलता और दुरूहता उनमें नहीं है। वे छायावाद और प्रगतिवाद के संधिस्थल के कवि हैं। उन्मुक्त, सरल, सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य करते कवि। उनकी भाषा और बिंबों के प्रयोग में एक उजाला और टटकापन है। एक ओर उनकी कविता प्रकृति के साथ उन्मुक्त और सघन आत्मीय रिश्ते की कविता है तो दूसरे छोर पर उनकी कविता अपने समय के सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों के साथ खड़ी प्रगतिशील चेतना से संपन्न कविता है। उनकी कविता में अपनी सारस्वत कविता की अनुगूँज भी है और अपने समय का विद्रोह भी। वे मूलतः औपनिवेशिक दासता और शोषण के विरुद्ध सम्राज्यवादी विरोधी कवि हैं। यह विरोध एक स्तर पर कथन के रूप में भी सामने आता है और दूसरे स्तर पर वह प्रकृति संबंधी कविताओं में गहरे आशय के रूप में विद्यमान है। तीसरा पक्ष है उनकी करुणा का और कहना न होगा कि चाहे नितांत वैयक्तिक संदर्भ में ही यह प्रकट हुई हो, लेकिन कहीं बहुत गहरे में यह उस औपनिवेशिक दासता से विक्षोभ को ही प्रतिबिंबित करती है।

प्रकृति संबंधी उनकी कविता भी छायावाद या उत्तर छायावाद की प्रवृत्तियों के बजाय प्रगतिवादी कविता के ही अधिक निकट है। उजले और टटके बिंब और उनके भीतर से प्रस्फुटित आशा अपने आंतरिक अभिप्रायों में उस दौर के अन्यायों का विरोध है। यथा—

सूरज ने सोने का हल ले
चीरा नीलम का आसमान
किरणों ने हँस कोमल असंख्य
बोये प्रकाश के पीतधान।
प्रतिदिन बोती है ज्योति-विधान
भू की रक्षा के लिए किरण।

या... (ज्योतिधान)

सुन घन गर्जन छितर दौड़ती
गो समूह-सी बदली
ग्वाले की लकुटी-सी रह-रह
चमक रही है बिजली।

प्रगतिवादी दौर की अन्य कविताओं को देखकर या बर्त्वाल की कविताएँ पढ़कर कई प्रश्न मन में उमड़ते हैं—

नीला देवदारु का वन है
छाया देख अकेली तल पर
हिलते तरुवर करते मर्मर।
हिमगिरि में निदाघ फैला है
खुरच रही हिरणियाँ बदन हैं।

(देवदारू वन)

एक लंबे अरसे तक चन्द्रकुंवर बर्त्वाल की कविताएँ संग्रह रूप में अनुपलब्ध रही हैं। मैंने (उमाशंकर सतीश) उनकी यहाँ-वहाँ बिखरी कविताओं को संकलित करने का कठिन कार्य किया है...।

एक छोटे-से जीवन में उनका इतना अधिक रचनात्मक अवदान उनकी विराट सर्जनात्मकता का प्रमाण है।

व्यंग्य कवि की जीवन-दृष्टि को अधिक मुखर रूप से उजागर करता है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों पर और अपनी सामाजिक विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य उन्होंने किये हैं। उनकी कविता आर्थिक शोषण, अफ़सरशाही, धार्मिक अंधविश्वास आदि अनेक विसंगतियों को उजागर करती है। उनकी 'पूजा' (चूहा-बिल्ली) 'मैकाले के खिलौने', 'रामनाम की गोलियाँ' आदि कविताएँ पढ़ी जा सकती हैं यथा...

मेड इन जापान खिलौनों से
सस्ते हैं लार्ड मैकाले के

ये नये खिलौने इनको लो
पैसे के सौ-सौ दो-दो सौ।
ये सदा रहेंगे बन सेवक
हर रोज़ करेंगे झुक सलाम
हैं कहीं नहीं इस दुनिया में
मिलते इतने क़ाबिल गुलाम।

या

जीवन भर फाँस ग्राहकों को
अब बैठे हर की पैड़ी पर
बूढ़े लाला भगवानदीन
मछलियाँ चुगाते ख़ुश होकर

(रामनाम की गोलियाँ)

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल को जीवन से गहरा लगाव था, जो उनकी कविताओं से भी प्रकट होता है और मृत्यु से कुछ माह पूर्व ही कथाकार एवं चिंतक यशपाल को लिखे उनके अंतिम पत्र से भी। पत्र में उन्होंने लिखा था कि अत्यन्त शोक है, कि मैं मृत्यु शय्या पर पड़ा हूँ। और बीस-पच्चीस दिन अधिक से अधिक बचा रहूँगा। सुवह को एक-दो घंटे विस्तर से उठ सकता हूँ और इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़ी कविताओं को एक कापी पर लिखने की कोशिश करता हूँ। जीवन और कविता के प्रति यह गहरा लगाव ही उन्हें सदा सृजनशील बनाये रहा। डॉ. गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविता की भावभूमि कुछ यों हैं—''

''देश-विदेश के अनेक प्रख्यात कवियों की कविताओं में प्रकृति केवल तात्त्विक उपयोग की वस्तु नहीं है। वर्ड्सवर्थ या कीट्स या मायकोवस्की या निराला जैसे कवियों में प्रकृति मात्र कोई सज्जात्मक उपस्थिति नहीं हैं...कवि की 'मनस्थिति' में सर्जना की प्रमुख संवाहिका के रूप में प्रकृति कितनी मार्मिक प्रभावोत्पादक भूमिका निभाती है। इसके दृष्टांत के रूप में कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का उल्लेख किया जा सकता है। चन्द्रकुँवर का नाम छायावाद के जन्मकाल में अवतरित हुआ था और अवसान भारतीय कविता के उस दौर के अवसान में ही घटित होता है। उन्हें छायावादी कवि के रूप में ही अपने जीवनकाल में स्वीकृति मिली। परन्तु अब चन्द्रकुँवर बर्त्वाल पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। ख़ासतौर से उनकी अधिसंख्य कविताओं को देख कर लगता है कि वे समूचे रूप में प्रकति के ही कवि थे। उनकी सर्जनात्मकता को

प्रकृति ने इस रूप में आच्छादित किया हुआ है कि उन्हें प्रकृति से बाहर किसी स्थिति विशेष के कवि के रूप में जाना ही नहीं जा सकता। चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताओं से एक सुखद आश्चर्य होता है...बीसवीं शताब्दी में शब्द बिंबों में शायद ही किसी दूसरे कवि ने हिमालय को इतने विविधवर्णी रूप में अंकित किया हो। स्पष्ट है कि चन्द्रकुँवर की चेतना में हिमालय का विशेष स्थान है। वे हिमालय क्षेत्र में ही पैदा हुए थे, परन्तु हिमालय जो निश्चित रूप से बाहरी रूपांकन है...एक ठोस भौतिक वस्तु है, कैसे कवि के लिये आभ्यंतरिक दर्पण बन गया है। जैसे वे एक हिमालय क्षेत्र में पैदा हुए हों और दूसरा ही गरिमापूर्ण हिमालय उनकी कविताओं में निर्मित किया गया हो—

> वर्षा भी बीती, वनांत में थे निश्चल फैले
> काँसों का उज्ज्वल सागर भी सूखा धीरे
> आज गगन में अंधकार है शून्य पथों पर
> गूँज रही है पवन, पत्र हैं मर्मर करते।

शिशिर हेमंत की इस कविता में ऋतु के संक्रमण का अनुभव जिस रूप में व्यंजित हुआ है उसे सादृश्य की अद्‌भुत क्षमता जैसी कोई संज्ञा देनी पड़ेगी। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि चन्द्रकुँवर की लगभग सभी कविताएँ सामान्य रूप से उक्ति वैभव लगती हैं। किन्तु असाधारण रूप में वे काव्य ऊर्जा का जैसे एक सागर आलोड़ित कर डालती हैं।...चन्द्रकुँवर बर्त्वाल एक सार्वजनिक क़िस्म के कवि हैं। हालाँकि उनका मुख्य विषय हिमालय है। परन्तु हिमालय क्योंकि सम्पूर्ण भारत और सम्पूर्ण मानव जाति की संपदा है। इसलिए इस क्षेत्र को किसी क्षेत्रीय आवेगात्मकता में सीमित नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक होने का दूसरा मुख्य आधार चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताओं में वर्णित भाव-संपदा है। कवि की भाव दृष्टि वेदना या पश्चात्ताप की नहीं है। उसमें एक कवि की आत्मा के पारदर्शी दृश्य हैं। एक सहजता है जो भाषाबिंबों के मार्फ़त स्वयं रचना में रूपायित होती चलती है।...यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल सच्चे अर्थों में एक कवि हैं। उनकी कविताओं को पढ़ने का अर्थ है पूर्वशती के भारत और भारतीय मानस को जानना-पहचानना। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है अपने होने के भाव को पहचान पाना। यह एक ऐसी उपलब्धिपूर्ण स्थिति है जो शायद कमज़ोर कवि नहीं दे पाते।...वे चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ न सिर्फ़ चन्द्रकुँवर में बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी कविता में एक बार फिर विश्वास जगाती हैं।"

डॉ. विमल की टिप्पणी से इतना तो अवश्य अभिव्यंजित होता है कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ कई दृष्टियों से मन में हलचल मचाती हैं। यह जानने की उत्सुकता भी उपजती है कि हिन्दी कविता, भारतीयता और विश्व साहित्य के संदर्भ में इस कवि के काव्य पर पुनः विश्लेषण करना होगा जिससे पूर्व शती के भारत और भारतीय मानस एवं साहित्य को जाना-पहचाना जा सके।

बर्त्वाल के काव्य के संवंध में कथाकार एवं चिंतक बटरोही का मानना है—"अपने जीवन के लगभग दस-बारह वर्षों में उन्होंने जितना स्वयं को अभिव्यक्त किया वह किसी भी कवि को विशिष्टता प्रदान करने के लिए पर्याप्त है।"

बहुत सम्भव है कि बर्त्वाल के काव्य के अध्ययन के बाद छायावाद और प्रगतिवाद काव्य आन्दोलनों पर नये ढंग से सोचने के लिए विवश होना पड़े। यह सम्भव है कि इन आन्दोलनों का समय और प्रेरणा-स्रोतों के बारे में कुछ एकदम चौंकाने वाले तथ्य मिलें।

"चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ विषय-वस्तु और अभिव्यंजना दोनों ही स्तरों पर छायावादी और छायावादी संस्कारों के प्रगतिवादी कवियों से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए उनकी ऐसी कविताएँ बहुत कम हैं जिनमें पंत या महादेवी की तरह प्रकति का केवल सुंदर, कोमल या उदास पक्ष ही प्रस्तुत किया गया हो। वास्तविकता यह है कि बर्त्वाल की कविताओं में कवि की दृष्टि प्रकृति पर है ही नहीं, प्रकृति के बहाने वह मानव-समाज विशेषकर अपने परिवेश के पहाड़ी समाज के बारे में सोचता है। दूसरे उनकी अधिकांश कविताएँ आख्यानात्मक हैं जो इस दौर के बहुत कम कवियों में दिखाई देती हैं। इस रूप में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की काव्यदृष्टि काफ़ी कुछ निराला से मिलती-जुलती है। निराला की तरह बर्त्वाल ने प्रकृति के विभिन्न अलंकारों के माध्यम से अपने परिवेश की वेदना कही है—कहीं सीधे, कहीं प्रतीकों-रूपकों या मिथकों के द्वारा।"

"बर्त्वाल की कविता प्रकृति से सीधे जुड़े हुए और प्रकृति के बीच खड़े एक संवेदनशील कलाकार की व्यथा है जो अपने अंचल के बहाने व्यापक मानवीय सरोकारों की बात करता है। कविता में आंचलिक मुहावरे को नई कविता के कुछ कवियों ने बड़े वज़नदार रूप में प्रस्तुत किया। बर्त्वाल की कविताएँ उस आंचलिक मुहावरे को, नई कविता वैशिष्ट्य को प्रगतिवादी दौर में रेखांकित करती दिखाई देती है। ठीक उसी प्रकार जैसे कहानी में भी यह मुहावरा नई कहानी दौर में आया। किंतु गुलेरी ने 1915 में ही उस विशेषता को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ उजागर किया था।

उपर्युक्त रचनाकारों एवं समीक्षकों ने चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के काव्य तत्त्वों पर अपने गहन अध्ययन एवं चिंतन को प्रस्तुत किया है। ये सभी समीक्षक हिंदी-कविता जगत के अन्वेषी हैं। परिणाम या महत्त्वपूर्ण तथ्य तो समय पर निकलते ही रहेंगे। देशकाल और समाजिक परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य अपना अर्थ एवं प्रसंग अभिव्यक्त करता रहा है। यहाँ प्रसिद्ध लेखक बटरोही का कथन दोहराना उचित होगा..."बहुत संभव है कि बर्त्वाल के काव्य के अध्ययन के बाद छायावाद और प्रगतिवादी काव्यांदोलनों पर नये सिरे से सोचने के लिए विवश होना पड़े। यह भी संभव है कि इन आंदोलनों का समय और प्रेरणा स्रोतों के बारे में कुछ एकदम चौंकाने वाले तथ्य मिलें। विद्वान समीक्षकों की मान्यताओं और उपर्युक्त समीक्षात्मक टिप्पणियों से यह तो स्पष्ट होता ही है कि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का सर्जनात्मक लोक एक ऐसा लोक है जिसमें संस्कृति, परंपरा, सामाजिक विद्रूपता, नवीनता, समाजगत मूल्यों का अवमूल्यन, साम्राज्यवाद विरोध, शोषण, मानसिक कुठाराघात, पर्यावरण का महत्त्व, राष्ट्रीयता एवं मृत्युबोध के अनेक काव्यात्मक बिंबों की परिधि में प्राणि एवं प्रकृति जगत के अनेक लोकरंजक एवं विक्षोभकारी तत्त्व मुख्यरूप से उपस्थित रहे हैं।"

परिशिष्ट
क

रचनाओं से चयन

सौगंध

लोग मेरा विश्वास करते तो मुझे सौगंध डालने की, ईश्वर की दुहाई देने की, राम का नाम लेने की क्या ज़रूरत थी ? लेकिन क्या करूँ—मामला यहाँ तक पहुँच गया है कि यदि मैं किसी मित्र को नमस्कार करूँ और सौगंध डालूँ कि नमस्कार करने वाला शतप्रतिशत मैं ही हूँ तब भी उन्हें विश्वास नहीं होगा। मथुरा के किसी मिष्ठान्नभक्षी के लिए जिस प्रकार चार सेर मिठाई निगलना मामूली बात है, उसी तरह मुझे ईश्वर-क़सम, बाप-क़सम, ईमान-क़सम, विद्या-क़सम डालना मामूली लगता है। इतनी क़समें डालने पर भी भूखा रहना पड़ता है। लोगों से कहता हूँ—भाई, सच मानो और मुझे अपनी विश्वासभरी मिठाई दो।

यह सच है कि मुझे मेरे दोस्तों ने बिगाड़ा है। पहले मैं भी और लोगों की तरह रहता था। सौंगंध कभी कभी ज़रूरत के मौक़ों पर ही डालता था। मेरे दोस्तों ने मुझे बुरी लतें डलवाईं। पहले अपने पैसों से सिगरेट ख़रीदकर देते हैं ये दोस्त। जब बेचारा सिगरेट पीने से लाचारी प्रकट करता है तो पाँच-छह दोस्त मिलकर कहते हैं—तुम्हें हमारी क़सम है, पीनी ही पड़ेगी। इस पर यदि कोई नहीं पीता है तो सब उसे परेशान करने पर उतारू हो जाते हैं। वह बेचारा अकेला पड़ जाता है। साथ के लिए उसे पीनी ही पड़ती है सिगरेट ! नौसीखिया जी पीने लगते हैं। इंजन बन जाते हैं। पाँच-छह दोस्त कमरे में आकर गद्दों पर लेटकर धूम्रपान करते नहीं अघाते। बोतलें खोलने और मदिरा पीने के लिए भी ये दोस्त बाध्य करते हैं। यदि इसी प्रकार ये लोग अर्थात् दोस्त सिगरेट पीना और बोतलें खोलना सिखाते हैं तो मैं क़सम डालकर (खाकर) कहता हूँ कि मुझे ये दोस्त क़सम डालने के सिवाय कुछ और नहीं सिखा सकते। बाप क़सम सच कहता हूँ। मैं जब भी इन्हें कोई ख़बर सुनाता हूँ—जैसे—चौपड़ा स्कूल में आज छुट्टी है। कल स्कूल में इन्सपेक्टर आ रहे हैं। परसों

से हमारी परीक्षाएँ शुरू हो रही हैं। तो ये दोस्त मेरा हाथ पकड़कर बार-बार पूछते हैं—सच कहते हो ! 'भई, सच कहता हूँ सच।' मैं कह देता हूँ। पर दोस्त जो ठहरे। उन्हें विश्वास नहीं होता। तब मुझे ज़ोरदार क़समें डालकर अपनी कही बात सही सिद्ध करनी पड़ती। पर दोस्तो, अब तो सौगंधों पर भी भरोसा नहीं रहा दोस्तों को।

वैसे तो किसी पर क्या फ़र्क़ पड़ता है। लोग क्या कहेंगे—क्या सोचेंगे। यदि मैं जी भरकर क़समें डालता रहूँ। क़समें खाता रहूँ। क़समें खाने का प्रचार होगा। मेरे पास कोई कुछ माँगने के लिए आएगा तो कहूँगा—पहले क़समें खाओ। तब तुम्हारा काम करूँगा। अन्यथा बख्शो। खुदा के नाम पर माफ़ करो। कहते हैं क़समें खाने से बड़े-बड़े काम हो जाते हैं। महान राष्ट्रों का भाग्यनिर्णय भी क़समें ही करती हैं। किसी अजनबी को दोस्त बनाने के लिए—तुम्हारी क़सम—कहने से अच्छा नुस्ख़ा मेरे पास नहीं है।

आप किसी अनजान के पास बैठ जाइए। कोई बात कहिए। यदि वह कहे कि सचमुच, तो उसका हाथ पकड़कर कहिए तुम्हारी क़सम सचमुच। बस, जान लो वह व्यक्ति आपका दोस्त बन जाएगा।

मेरे एक दोस्त हैं। राजनीतिज्ञ हैं वह। कभी सौगंध नहीं डालते। उनका कहना है कि सौगंध तो झूठे लोग डालते हैं। हम सच्चे हैं इसलिए क़समें नहीं खाते हैं। क़समों का प्रचार करते हुए वे मुझे देखते हैं तो डाँटते हैं। दोस्तों से मिलकर मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचते हैं। षड्यंत्र में स्वयं उनकी पत्नी भी शामिल रहती हैं। सच कहता हूँ सच। बाप क़सम।

एकदिन इन्होंने मुझे भोजन पर आमंत्रित किया। मैं निश्चित समय पर इनके घर पहुँच गया। नाश्ता हल्का ही किया था। एक प्याला दूध और एक पतला पराँठा। उनसे मिला तो दोनों—पति-पत्नी खुश दिखाई दिए। मैं देख रहा था मेज़ पर खाना खा लेने के बाद जूठी थालियाँ पड़ी थीं। मैं सहम गया। कोई षड्यंत्र अवश्य है। ये मुझे आज भूखा रखना चाहते हैं।

मैं तुरंत यहाँ से लौट जाऊँगा। मैंने बातचीत में उनसे आत्मीयता जताई। पत्नी तो नौकर को डाँटने लगीं। ज़ोर-ज़ोर से वह कह रही थीं—इन थालियों को उठाओ। कल रात से यहीं पर पड़ी हैं। और सुनो हाथ-मुँह धोने के लिए पानी भी ले आओ।

मैं देखता रहा। थालियों से मालूम होता था कि इन लोगों ने अभी-अभी भोजन किया है।

मैं आश्चर्यचकित था कि इन्होंने मेरी प्रतीक्षा क्यों नहीं की ? झेंप मिटाने

के लिए मैं बोला—अच्छा किया आप लोगों ने भोजन कर लिया। मेरी भी प्रतीक्षा कर लेते।

वे दोनो बोले—नहीं, हमलोगों ने भोजन नहीं किया है। भोजन बनेगा। सब साथ साथ खाएँगे।

—क़समिया कहते हो या साज़िश है ? मैंने पूछा। दोनों बोले—भोजन बन जाता है। चिंता न करें आप। मैंने फिर कहा—क़समिया कहते हो ? दोनों बोले—क़समें तो झूठे खाते हैं। हम तो सच्चे हैं। उनका नौकर मुझे देखकर हँस रहा था। वह मेज़ पर पड़ी थालियाँ उठा रहा था।

इतने में मित्र की पत्नी ने अपनी कविताओं की कापी निकाली। कापी खोलकर वह तो कविताएँ सुनाने लग गई। मैं सुनने लग गया।

बारह बज गए थे। वह फिर भी कविताएँ सुनाती रही। फिर एक बजा। वह चुप न रहीं। कविताएँ सुनाती रही। मुझे भूख लग गई थी। मैं ऊबने लग गया था। पर कवयित्री ने तो फिर अपना लिखा खंडकाव्य ही पढ़ना शुरू कर दिया। खंडकाव्य-कथा में नायिका का विवाह संपन्न हो गया था। अब तो दो बज चुके थे। मैं खंडकाव्य सुनने से छुटकारा चाहता था। भूख भी लगी थी। मैंने अपने ऊपर क़ाबू पाया। उनसे घर लौटने की अनुमति चाही।

कवयित्री बोली—बस, खाना अभी बन जाता है। नौकर को कह दिया है।

मैंने कहा—अब तो दो बज चुके हैं।

वह बोली—आपकी घड़ी ग़लत है।

मैंने कहा—क़समिया बोलिए ?

वह बोली—क़समें तो झूठे खाते हैं। हम तो सच्चे हैं।

मैंने निश्चय किया कि अब तो यहाँ से फूटने में ही भला है। मैं उठा। इतने में उन दोनों ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए और मुझे दबाकर धम्म से कुरसी पर बिठा दिया। वे दोनों रसोईघर में पहुँचकर रामदीन को गालियाँ देने लग गए। गालियाँ इसलिए उगली जा रही थीं कि रामदीन गहरी नींद में सो रहा था। चार बज चुके थे। मेरे धैर्य का बाँध टूट चुका था।

गालियाँ सुनने के बाद रामदीन खाना बनाने की तैयारी करने लगा।

कवयित्री अंदर से सितार ले आई। उसकी पतली-पतली अंगुलियाँ सितार के तारों पर चलने लगीं।

मैं गुस्से में था। मेरे पेट में चूहे कूद रहे थे। कुछ-कुछ अँधेरा हो चला था। खाना बन रहा था। कवयित्री ने सितार बजाना बंद किया और मुझसे बोली—चलो

सिनेमा चलें। इन्हें तो वक़्त ही नहीं मिलता। मैं सिनेमा चलने के लिए तैयार हो गया। रास्ते में ही फूटने के लिए मन बना लिया था मैंने। ऐसा ही मैंने किया भी। रास्ते में ही मैंने कवयित्री से विदा ले ली। वह हँसती रही।

फिर तो मैंने किसी का निमंत्रण स्वीकार न करने का फ़ैसला कर लिया। इस घटना की चर्चा मित्रों से करता हूँ तो वे विश्वास नहीं करते। तब मुझे सौगंध का सहारा लेना पड़ता है।

मैं कहता हूँ बाप क़सम ऐसा हुआ। फिर भी कोई विश्वास नहीं करता।

अब तो इच्छा होती है कि क़समें खाने की प्रक्रिया पर 'सौगंध रहस्य' नामक एक पुस्तक ही लिख डालूँ।

सुदामाप्रसाद

"....मुझ पर बहुत बड़ा सदमा तो पड़ा ही, साथ ही यह भी दुःखद है कि हिंदी का एक पल्लवित-पुष्पित होनेवाला सुमन डाली से टूट गया या तोड़ा गया।

मुझे सुदामाप्रसाद प्रिय था। वह मेरा मित्र था। बातचीत करने में सरल, व्यवहार में पटु और पढ़ाई में तेज़ था। दैवी प्रकोप ने उसे जीने का अवसर नहीं दिया। पहाड़ी जीवन के परिवेश की प्यारी-प्यारी बातें करता था वह। बल्कि न्यारी-न्यारी बातें छौंकता था वह।

रुग्णता, और वह भी जानलेवा रुग्णता किसी को जीवन नहीं बख़्शती। उसके रोग के उपचार की भरसक कोशिशें हुईं। परंतु उसे डाली से टूटना ही था।..."

(उपर्युक्त दोनों रचनाएँ श्री रघुवीर सिंह बर्त्वाल के सौजन्य से प्राप्त)

प्रयाग से पिता के नाम पत्र

पूज्य पिताजी,

प्रणाम।

आपके भेजे हुए दो सौ रुपये प्राप्त हो गये हैं। हालैंड हॉल छात्रावास में रहने-खाने और विश्वविद्यालय में अध्ययन करने की शुल्क राशि चुका देने के उपरान्त मात्र पचास रुपये शेष रहेंगे। इन रुपयों में से कुछ तो कुर्त्ता-पायजामा ख़रीदने में व्यय होंगे और कुछ काग़ज-पेन्सिल आदि पर।

आपने पढ़ाई पर विशेष ध्यान देने के लिए ज़ोर दिया है। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपको इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कक्षा में कमज़ोर छात्रों में नहीं गिना जाता हूँ। परीक्षा निकट है और मैं प्रतिदिन रात्रि में तीन घंटे पढ़ लेता हूँ।...(अक्षर धूमिल) परंतु पिताजी, कविता लिखना मेरे जीवनकर्म का मुख्य अंग बन चुका है। नागनाथ, पौड़ी और देहरादून की भाँति यहाँ भी मैं कविता लिखता हूँ। काव्यरचना करने के लिए नागनाथ में आपने ही मुझे प्रेरित किया था। आपके पत्र की प्रतीक्षा करता रहता हूँ। जियाजी (माँ) को प्रणाम कह देंगे। उमा और पारी को चिरंजीव अवश्य कर देंगे।

पुनश्चः प्रयाग में स्वतंत्रता आंदोलन ज़ोरों पर है। पंडित नेहरू और आचार्य कृपलानी के भाषण होते हैं। अच्छे लगते हैं। सेमवाल जी को उनके मित्र ने लिखा है कि गढ़वाल में श्रीधर किमोठी और नरेन्द्र किमोठी ने डाक-बँगले जला दिए हैं। क्या सच है ?

आपका ही,
—कुँवर सिंह

लखनऊ से पिता के नाम पत्र

पूज्य पिता जी,
प्रणाम।

आपके भेजे हुए दो सौ रुपये प्राप्त हो गए। मैं इस धन का सतर्कता से सदुपयोग करूँगा। इधर मैं क्षीणकाय होता जा रहा हूँ। चलने-फिरने से अधिक थकान अनुभव करता हूं। नींद कम हो गई है। विश्वविद्यालय से लौटकर तो आराम ही करता हूँ। भोजन करने की इच्छा मरती जा रही है। पढ़ाई गंभीर है परंतु आप और जियाजी (अर्थात् माता) चिंतित न हों। ज़्यादा ही अशक्त हो जाऊँगा तो घर लौट आऊँगा। यही राय आपने भी घर पर रहते हुए दी थी। लखनऊ की गर्मी और मच्छरों का आक्रमण सहन कर ही रहा हूँ। प्रयाग में ऐसी उमस और घुटन न थी जैसी लखनऊ में अनुभव कर रहा हूँ। लखनऊ में नवाबी संस्कृति अधिक है। प्रयाग में धार्मिक वातावरण देखकर प्राचीन भारतीय श्रीसपंदा की जानकारी मिलती थी (अक्षर धुँधले हैं....) गंगा और यमुना के संगम का अद्भुत दृश्य और पावन मानसिकता यहाँ नहीं है। गोमती का गंदला पानी देखकर मन प्रफुल्ल नहीं होता। इन दिनों हमारे पहाड़ों की नदियाँ अथाह जलराशि बिखेरती होंगी। गर्जन-तर्जन का भयावह-सा वातावरण बना होगा। डमारगाड (कांचन गंगा) का प्रवाह देखने योग्य होगा। डमारगाड के प्रवाहित होने की गर्जना और घराट के चलते रहने की ठक-ठक-ठक ध्वनि से लोगों

के मन आनंदित होते होंगे। ऐसी सत्य परिकल्पना मैं करता हूँ—ऐसा ही होता होगा। दोनों भुलियाँ (छोटी बहनें) खैणा (देवफल) खाने का आनंद ले रही होंगी और खेतों में लटकता हुआ हरा-भरा घास काटने में व्यस्त रहती होंगी। पिताजी, क्या आप लोगों ने रोपनी (धान के पौधों की रोपाई) संपन्न कर ली ? खेती-बाड़ी की इसी प्रक्रिया को संपन्न करने में मैं सम्मिलित नहीं हो पाया। इस बात का मुझे हमेशा दुःख रहेगा। यही समय है जब विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य आरंभ हो जाता है। संभवत भविष्य में कभी रोपणी के दृश्य देखने को मिलेंगे।

आपने पत्र में लिखा कि श्री हरिदत्त देवरानी ने प्रयाग से *वसुंधरा* नामक पुस्तक भेजी है और उसमें काफलपाक्कू (मेरी कविता) पढ़कर आप प्रसन्न हुए हैं। वह कविता मैंने देहरादून में लिखी थी। कविताएँ तो मैं लखनऊ में भी लिखता रहता हूँ। एक लेखक मित्र ने मेरा परिचय यहाँ के प्रकाशक और लेखक श्री दुलारेलाल भार्गव से कराया है। भार्गव जी मेरी कोई पुस्तक प्रकाशित करने के लिए कह गए हैं। कुछ धन देंगे तो मैं अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने में ख़र्च कर सकूँगा।

जिया जी (अर्थात् माता जी) को मेरा प्रणाम और उमा-पारी बहनों को चिरंजीव कह देंगे। समय पर पत्र भेजेंगे। शेष पुनः। आपका ही —कुँवर सिंह।

(उक्त पत्र श्री रघुवीर सिंह बर्त्वाल, ग्राम मालकोटी से प्राप्त।)

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की रचनाएँ

1. **चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ–1**
संकलन एवं संपादन–उमाशंकर सतीश
प्रकाशक–सरस्वती प्रेस, दिल्ली-इलाहाबाद।

2. **चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ–2** (अप्रकाशित)
संकलन एवं संपादन–उमाशंकर सतीश,

3. चन्द्रकुँवर बर्त्वाल कृत तथा श्री राजेश्वर भार्गव, भार्गव प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ; एजुकेशनल पब्लिशिंग कंपनी, चारबाग-लखनऊ; साथी प्रेस, हेवेट रोड, लखनऊ; कुसुमपाल नीहारिका, रायबिहारी लाल रोड, लखनऊ तथा श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा, आई. टी.कालेज, लखनऊ द्वारा प्रकाशित कृतियाँ–

    1. *यौवन के आँसू/नंदिनी*
    2. *कंकड़-पत्थर*
    3. *सुंदर-असुंदर*
    4. *प्रणयिनी*
    5. *पयस्विनी*
    6. *जीतू*
    7. *विराट ज्योति*
    8. *नागिनी* (कहानी संग्रह)
    9. *नाट्यनंदिनी* (प्रहसन),
    10. *माधवी*

4. *क्षत्रीयवीर, कर्मभूमि, विशाल भारत, सरस्वती, आजकल, प्रतीक, नया प्रतीक, वसुंधरा, रूपांबरा, वाग्देवी* और *हिमालय* आदि पत्रिकाओं एवं संकलनों में प्रकाशित रचनाएँ।

संदर्भ ग्रंथ

इतिहास और आलोचना—नामवरसिंह
छायावाद—नामवर सिंह
नई कविता का सौंदर्यशास्त्र—मुक्तिबोध
नई कविता—स्वरूए एवं समस्याएँ—जगदीश गुप्त
विवेक के रंग—देवीशंकर अवस्थी
मानव-मूल्य और साहित्य—धर्मवीर भारती
नये प्रतिमान—पुराने निकष—लक्ष्मीकांत वर्मा
निराला—परमानंद श्रीवास्तव
राहुल सांकृत्यायन—प्रभाकर माचवे
विराट-हृदय—शंभुप्रसाद बहुगुणा
हिमवंत का एक कवि—शंभुप्रसाद बहुगुणा
हिन्दी साहित्य का इतिहास—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की कविताएँ—1—उमाशंकर सतीश

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल (1919-1947) आधुनिक हिन्दी काव्य-संसार में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ स्थापित कर विशिष्ट रचनात्मक आयाम के साथ, अपनी पहचान क़ायम रखनेवाले एक महत्त्वपूर्ण कवि थे। उनकी रचनाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता और समकालीन मनोवृत्तियों की सजग एवं युवोचित अभिव्यक्तियाँ रेखांकनीय हैं। प्राकृतिक संसाधनों एवं सांस्कृतिक स्रोतों के दोहन के ख़िलाफ़ लड़नेवाले तथा असामाजिक तत्त्वों के विरुद्ध आक्रामक तेवर वाले कवि **चन्द्रकुँवर बर्त्वाल** साहित्य-सृजन के साथ पर्यावरण के प्रति भी सजग रहे हैं। उनके समूचे साहित्य-कर्म में गहरी मानवीय संवेदनाएँ व्यंजित हुई हैं।

स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए संघर्षरत और क़लम के सेनानी रहे बर्त्वाल वैचारिक क्रान्ति के दूत तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही दृष्टि से उच्चकोटि के रचनाकार थे। हिन्दी काव्य-जगत के छायावादोत्तर युग में उनका लेखन नयी पीढ़ी के लिए प्रेरक और दृष्टि-बोधक रहा है। प्रकृति एवं जन जीवन के रसपूर्ण प्रसंगों तथा प्रश्नाकुल प्रस्थानों से युक्त उनकी उपस्थिति भारतीय काव्य-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवन के अन्तिम सात वर्षों में तपेदिक से आक्रान्त रहने के बावजूद वे साहित्य-सृजन के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय रहे।

कवि तथा समीक्षक **डॉ. उमाशंकर सतीश** ने प्रस्तुत विनिबन्ध में चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की साहित्यिक उपलब्धियों को राष्ट्रीय-साहित्य सृजन के ऐतिहासिक संदर्भ में विश्लेषित कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

ISBN 81-260-0298-0

आवरण : कृष्ण केतन

मूल्य : पचीस रुपये